Sita Ram's Hindi Shakespeare

AS YOU LIKE IT

ऐज़ यू लाइक इट

शेक्सपियर भाषा।

अपनी अपनी रुचि।

अँगरेज़ी के प्रसिद्ध महाकवि शेक्सपियर के
"ऐज़ यू लाइक इट" नामक प्रसिद्ध नाटक
का भाषानुवाद

श्रीअवधवासी भूपउपनाम
लाला सीताराम, बी. ए.
रचित

प्रकाशक,
रामनरायन लाल, बुकसेलर,
इलाहाबाद

सन् १९१७ ई० ।
मूल्य ॥)

FOREWORD.

—:o:—

The idea of publishing a translation of Shakespeare's plays in the vernacular of the country was conceived by me thirty years ago, and a small beginning was made by a rendering of the Comedy of Errors in Urdu under the title of Bhul-Bhulayyan, a name since borrowed, without the courtesy of acknowledging, by numerous other writers. This book was published by the late Babu (afterwards Hon'ble Rai Bahadur) Ganga Prasad Varma of Lucknow, and he informed me that it had a very favourable reception. It has since passed through four editions. It was followed by a few other plays, but after I took up my metrical translation of Sanskrit books it was laid aside—but for a time only. My reasons for taking up this work are explained in a prospectus issued 22 years ago, an extract from which will not be out of place here.

"Sweetest Shakespeare Fancy's child
Warble his native wood-notes wild".

MILTON.

An attempt to publish a translation of Shakespeare, 'the chief glory of English Literature', does not stand

in need of any apology. The doggerels of India have been published in English with no object other than to give the governors an insight into the habits and feelings of the governed masses. Need I then say that an English drama has always its value for my countrymen as throwing a flood of light on the social customs and modes of thought of those whom Providence in His Infinite Goodness has been pleased to place in authority over us ? Could there be a better mode of bringing home to the idlers of India the tenderness of Cordelia, the fortitude of Edgar, the fidelity of Kent and the heroism of Henry V ?

In an undertaking like the present, however, the political reason is certainly not the first which suggested itself to a writer who is an ardent lover of Drama, both ancient and modern. The most thoughtless reader of Shakespeare will endorse the opinion, so often quoted, that Shakespeare was the poet not 'for an age but for all time'. The artist,

> 'Whom nature's self had made
> To mock herself and truth to imitate'

needs no introduction to any nation having the least claims to modern refinement.

'Shakespeare', to use Irving's words, "is the true enchanter whose spell operates not upon the senses but

upon the imagination of the heart. He is able to spread the magic of his mind over the very face of nature and to give to things and places a charm not their own, and to turn this working day-world into a perfect fairyland". 'The protagonist on the great arena of modern poetry,' 'the glory of human intellect' extended the Empire of Art over limits not yet recognised and invested it with a splendour which the world had never seen before. There never was an author whose works have been so carefully analysed and illustrated, so eloquently expounded or so universally admired.

Could therefore a better work be pointed out, a vernacular rendering of which would supply a want seriously felt in Hindi? Can there be any concealment of the fact that the vernacular romances have a most demoralising effect upon the minds of readers? If therefore it is necessary that the enjoyments of the mind may be of such a nature as to become a spur to our activity and efficiency of action, they must be of a nature to keep our ideas healthy and not to overrefine the feelings, to engage the heart and the imagination as well as the practical understanding and to strengthen the will in its resolves; and can it be denied that the plays of Shakespeare possess this property in the highest degree?

I therefore propose to publish Hindi versions of all the thirty-seven plays of Shakespeare. As these translations are not written with a view to serve as helps to students, those who will seek for close and faithful renderings of individual passages will be sorely disappointed. I shall follow the same principle which has been my guide in my Hindi translations of Sanskrit books—keeping in view the sense of the author, expressing it in the simplest language and avoiding the repulsive character of a paraphrase.

ALLAHABAD:
15th March, 1917.

SITARAM.

AS YOU LIKE IT

Dramatis Personæ नाटक के पात्र।

Duke, *living in exile*—बनवासी राजा।

Frederick—पुण्डरीक, उसका भाई जिसने राज्य हर लिया था।

Amiens—अमीचन्द Jaques—जयकृष्ण	बनवासी राजा के सरदार।

Lebean—लीलाधर—पुण्डरीक की राजसभा का सभ्य।

Charles—चाणूर—पुण्डरीक का पहलवान।

Oliver—अलिवर Jaques—जयकरण Orlando—आर्यनन्दन	रविनन्दन के पुत्र।

Adam—अनन्त Denn—दिनेश	अलिवर के नौकर।

Touchstone—मूसरचन्द—एक विदूषक।

Sir Oliver Martext—श्रीअलिवर मार्त्तण्ड—पुरोहित।

Corin—करन Silvius—सालिक	दो अहीर।

William—विलासी—अतवरिया से प्रेम करनेवाला एक गँवैया।

Hymen—गणेश—विवाह के अधिष्ठाता देवता के स्वाँग में एक मनुष्य।

Rosalind—रसलीना—बनवासी राजा की कन्या।

Celia—सुशीला—पुण्डरीक की बेटी।

Phebe—फुलिया—एक अहीरिन।

Audrey—अतवरिया—एक गाँव की स्त्री।

Lords, Pages, Foresters and Attendants	बहुत से सरदार, दास, अनुचर इत्यादि।
Scene—Oliver's Orchard, Usurper's court and the Forest of Arden	स्थान—अलिवर की फुलवारी, उसके घर के निकट पुण्डरीक का राजभवन और आरण्यक बन।

कहानी का संक्षेप।

—:o:—

एक बड़ा धर्मात्मा राजा था। उसके छोटे भाई ने जो कि बड़ा दुष्ट था उसका राज छीन लिया और उसे निकाल दिया था और वह जाकर बनमें रहने लगा। दोनों के एक एक कन्या थी। इन दोनों में परस्पर बड़ी प्रीति थी। उस राज्य में एक सरदार रहता था जिसके तीन पुत्र थे। उनमें सब से बड़ा पुत्र दुष्ट और अधर्मी था और सब से छोटा पुत्र बड़ा तेजस्वी विद्वान् और वीर था। बड़ा भाई उसको मार डालने का प्रबन्ध करने लगा। इस कारण वह भी भाग कर उसी वन में पहुँचा जहाँ बनवासी राजा रहता था—वनवासी राजा की पुत्री उसपर आसक्त थी पर वह अपने चचा के घर रहती थी—यह हाल उसके चचा ने जानकर अपनी भतीजी को भी निकल जाने की आज्ञा दे दी—दोनों चचेरी बहिनों में अत्यन्त प्रेम होने के कारण दोनों आपस में सलाह करके चुपके भाग गयीं और उसी बन में पहुँची जहाँ राजा निवास करते थे—यह बात जान कर दुष्ट राजा को बड़ा क्रोध हुआ, पता लगाने से मालूम हुआ कि सरदार के उस पुत्र का भी पता नहीं है जिस पर उसकी भतीजी आसक्त थी। तब उसके बड़े भाई को बुलाकर उसकी सब जायदाद ज़ब्त कर ली और हुक्म दिया कि अपने छोटे भाई को जैसे बनै वैसे पकड़ लाओ—वह भी संयोग बस उसी बन में पहुँचा—वहाँ उसपर एक सिंहिनी झपटी कि अचानक छोटा भाई पहुँच गया और सिंहिनी को मार कर बड़े भाई को बचा लिया। तब से दोनों भाइयों में फिर से प्रीति हो गई और बन ही में इन दोनों का दोनों कन्याओं से विवाह भी हो

गया। इतने में बनवासी राजा के भाई के मन में आया कि बन में चल कर उसको मार डालें परन्तु रास्ते में एक महात्मा से भेंट हुई जिसके उपदेश का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने राजपाट सब तज दिया और संन्यासी हो गया—बनवासी राजा ने फिर अपना राजपाट पाया और सब आनन्द से रहने लगे।

तुलसीदासजी ने सच कहा है—

जाकर जापर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलै न कछु सन्देहू॥

॥ श्रीसीतारामाभ्याम्नमः ॥

शेक्सपियर भाषा।

पहिला अङ्क।

[स्थान १—अलिवर की फुलवारी]

(आर्यनन्दन और अनन्त आते हैं)

आर्यनन्दन—देखो अनन्त ! हमैं जहाँ तक सुध है हमारे पिता मरते समय ढाई हज़ार रुपये हमारे लिये छोड़ गए थे और भाई को सहेज गये थे कि हमैं अच्छी तरह रक्खैं—तभी से हम दुःख में पड़े—हमारा दूसरा भाई तो पाठशाला में है और सुना जाता है कि अच्छी तरह पढ़ रहा है। पर हमको भाई ने घर ही में रख छोड़ा है और जो सच पूछो तो हमारी परवाह नहीं करते। ऊँचे कुल में जन्म लेने वाले के लिये जो कुछ होना चाहिये वह हमारे लिये कुछ भी नहीं होता—मानो हमें पशु के समान बाड़े में रख छोड़ा है—हमसे ज़ियादा तो घोड़ों की ख़बरगीरी होती है—क्योंकि खिलाने पिलाने के सिवाय उन्हें सिखाने के लिये अच्छे अच्छे सवार रक्खे गये हैं और हमैं देखो कि हम उनके सगे भाई हैं पर सिवाय पेट पालने के और कुछ भी लाभ नहीं—हम उनका क्या एहसान मानै—और भी ! जो कुछ हमारे भाग्य से हम को मिला है उनके बर्ताव से वह भी नष्ट हो रहा है—वह

हमको नौकरों के साथ खिलाते हैं—भाई के तरह बराबर बैठाते नहीं—और विद्या से वञ्चित रख के कुल की मर्यादा को जड़ से मिटा रहे हैं—कुछ भाईपना मालूम ही नहीं होता—इस बात का हमें बड़ा दुःख है—इसके निवारण का कुछ उपाय तो नहीं सुझाई देता पर अब मुझसे यह बहुत दिनों तक न सहा जायगा।

अनन्त—वह देखिये ! सामने आप के भाई चले आ रहे हैं।

आर्यनन्दन—अनन्त ! तुम ज़रा पीछे दुबक जाओ, देखो ! भाई साहब मुझे कैसे छेड़ते है ? (अनन्त आड़ में हो जाता है।)

(अलिवर आता है)

अलिवर—कहो जो ! यहाँ क्या बना रहे हो ?

आर्यनन्दन—कुछ नहीं—मुझे बनाना सिखाया ही क्या गया है जो बनाऊँ ?

अलिवर—अच्छा तो क्या बिगाड़ रहे हो।

आर्यनन्दन—भाई साहब ! सच तो यह है कि आप अपने जिस भाई को अपढ़ रख के बिगाड़ना चाहते हैं वही मैं आप का सहायक बन कर आलस्य से अपनेही को बिगाड़ रहा हूँ।

अलिवर—तो किसी अच्छे काम में लग जाओ।

आर्यनन्दन—क्या करूँ ? आप के घोड़ों के लिये घास छील लाया करूँ और उनके साथ मैं भी घास ही खाया करूँ ? मैंने क्या बहुत ख़र्च कर डाला है कि ऐसी दरिद्रता को पहुँच गया हूँ ?

अलिवर—तुमको कुछ होश है कि कहाँ हो ?

आर्यनन्दन—जी हाँ ! मैं जानता हूँ ! यहाँ आपकी फुलवाड़ी में हूँ—

अलिवर—यह भी जानते हो कि किसके सामने खड़े हो ?

आर्यनन्दन—हाँ ! यह भी अच्छी तरह जानता हूँ कि जिसके सामने खड़ा हूँ वह आप मेरे भाई हैं—पिता का उतनाही अंश मुझ में है जितना आप में—लेकिन आप मुझसे बड़े होने के कारण श्रेष्ठ और पूजनीय हैं—धर्म से संसार की यही मर्यादा है—आपके और मेरे बीच में बीस भाई भी होते तो भी मैं उसी वंश का होता—मुझ में, मैं फिर कहता हूँ पिता का उतना ही अंश है जितना आप में। हाँ ! आप पहिले जन्मे इससे उनके समान पूज्य हो गये।

अलिवर—क्या बकता है।

आर्यनन्दन—आओ बड़े भाई ! आओ ! लेकिन यह जान लो कि अपने छोटे भाई से लड़ने में तुम उससे घट कर हो।

अलिवर—क्यों रे नीच ! तू मेरे ऊपर हाथ चलायेगा ?

आर्यनन्दन—मैं नीच नहीं हूँ—मैं श्रीरविनन्दन का सब से छोटा बेटा हूँ। वह मेरे पिता थे ! जो उनके पुत्र को नीच कहता है उसकी समझ नीच है—तुम मेरे भाई ठहरे ! दूसरा कोई कहता तो मैं बिना उसकी जीभ निकाले न मानता—तुमने यह कुबचन मुझको नहीं कहा, अपने को कहा है।

अनन्त—(आगे बढ़ कर) मेरे प्यारे स्वामियो ! क्या करते हो ! अपने पिता के गुन सुमिरन कर के शान्त हो जाओ।

अलिवर—छोड़ो ! मुझे जाने दो।

आर्यनन्दन—मैं छोड़ूँगा—मेरी बातों का उत्तर दीजिये—मेरे पिता ने वसीयत नामे में लिखा और तुम को आज्ञा दी कि मुझे अच्छी तरह से पढ़ाना लिखाना पर तुमने मुझे एक गँवार के समान बना रक्खा है—ऊँचे कुल के कोई गुन मुझे नहीं सिखाये—मेरे पिता का जो अंश मुझ में है वह अब ज़ोर कर रहा है—इस कारण मैं इस दशा को बहुत दिनों तक सह नहीं सकता—इसलिये ! या तो मुझे कुलीनों के योग्य काम में लगाओ नहीं तो जो धन मेरे पिता मेरे लिये छोड़ गये हैं वह मुझे दे दो कि मैं उससे अपने भाग्य की परीक्षा करूँ ।

अलिवर—तुम क्या करोगे ? उड़ा पुड़ाकर भीख माँगोगे ? अच्छा ! घर चलो । तुमसे ज़ियादा झंझट कौन करै—तुम को तुम्हारे हिस्से में से कुछ मिल जायगा—मुझे छोड़ो ।

आर्यनन्दन—अपने लाभ का विचार करना ही चाहिये इससे मैं आपको अधिक कष्ट न दूँगा—

अलिवर—ओ बूढ़े कुत्ते ! तू भी इसी के साथ दूर हो ।

अनन्त—क्या मुझे बूढ़े कुत्ते की पदवी मिली है ? अजी साहब ! मैंने आपकी सेवा में अपने दाँत गिरा दिये—परमेश्वर मेरे पहिले स्वामी का भला करें ! वह मुझे कभी ऐसा न कहते ।

(आर्यनन्दन और अनन्त बाहर जाते हैं)

अलिवर—यह इतना सिर चढ़ गया है ? मेरा अन्न खा कर मेरा ही सामना करने लगा है ? अच्छा, मैं तुम्हारे उद्धत-पन की दवाई करूँगा—और सौ रुपये भी तुम को न दूँगा—अरे दिनेश !

(दिनेश आता है)

दिनेश—आप ने बुलाया ?

अलिवर—क्या राजा का पहलवान चाणूर मुझसे कुछ कहने को यहाँ आया था ?

दिनेश—हाँ सरकार ! आप की इच्छा हो तो वह द्वार पर खड़ा है और आप से भेंट करना चाहता है और कुश्ती भी कलह ही होगी—

(चाणूर आता है)

चाणूर—आप की जय हो ।

अलिवर—चाणूर जी ! नये दरबार के क्या नये समाचार हैं ?

चाणूर—महाशय ! कोई नये समाचार नहीं—वही पुरानी बातें हैं । यानी बड़े राजा को उनके छोटे भाई ने देश से निकाल दिया है और तीन चार स्वामिभक्त सरदार आपही उनके साथ चले गये हैं । उनकी भूमि और आमदनी से नये राजा और भी धनी हो गये हैं—इसी से उन लोगों को चले जाने की आज्ञा दे दी ।

अलिवर—क्यों जी ! क्या बड़े राजा की बेटी रसलीना अपने बाप के साथ देश से निकाल दी जायगी ?

चाणूर—जी नहीं ! नये राजा की बेटी सुशीला जो उसकी चचेरी बहिन है बचपन ही से एक साथ रहने से इतना प्रेम रखती है कि उसके देश निकाले जाने पर या तो वह भी उसके साथ चली जायगी और या उसके बिना प्राण ही तज देगी । वह राजभवन में मौजूद है और नये महाराज भी उसको अपनी ही बेटी के बराबर

मानते हैं। इन दोनों राजकुमारियों में ऐसी प्रीति है जैसी पहिले किसी में नहीं देखी गई—

अलिवर—पहिले राजा कहाँ रहेंगे ?

चाणूर—सुना जाता है कि वह इस समय आरण्यक वन में हैं और बहुत से प्रसन्नचित्त पुरुष भी उनके साथ हैं—वह वहाँ बनवासियों की नाईं दंड पेल रहे हैं। और भी सुना गया है कि बहुत से अच्छे जवान भी नित उनके पास चले जा रहे हैं और सतयुगी लोगों की नाईं आनन्द में रहते हैं।

अलिवर—क्या तुम कलह नये राजा के सामने कुशती लड़ोगे ?

चाणूर—जी हाँ ! ज़रूर ! मुझे उड़ती ख़बर मिली है कि आप के छोटे भाई भेस बदल कर कल मुझसे एक पकड़ लड़ना चाहते हैं। साहब ! मैं तो अपनी प्रतिष्ठा के लिये कलह ज़रूर लड़ूँगा, और जिसके हाथ पैर न टूटें वह बड़ा भाग्यवान है। आप के भाइ अभी निरे बच्चे और सुकुमार हैं। जो वह ही सामने आये तो अपनी मान रक्षा के लिये उनको अवश्य पछाड़ना पड़ैगा— पर मुझे बड़ा संकोच मालूम पड़ता है। यही कहने मैं आया हूँ कि या तो आप उन्हें ऐसा साहस करने से रोक लें और या उनकी जो प्रतिष्ठा घटै उसको सहने के लिये तैयार रहें—क्योंकि यह उन्हीं का हठ है। मैं नहीं चाहता।

अलिवर—चाणूर ! मैं तुम्हारी इस प्रीति का धन्यवाद देता हूँ और तुम देख लेना कि मैं इसका कैसा अच्छा बदला दूँगा—मुझको भी मेरे भाई की यह इच्छा मालूम हो

गई है और मैंने उसको कई युक्तियों से रोका परन्तु उसका हठ । चाणूर ! मैं तुमसे सच कहता हूँ, उसको अपने बल का बड़ा अभिमान है और वह दूसरे के गुणों से बहुत जलता है—देखो ! मै उसका भाई हूँ मुझसे ही ऐसा बैर विरोध किया करता है कि क्या कहूँ ! इसलिये तुमको चेताये देता हूँ, सावधान रहना । तुम उसकी गर्दन तोड़ डालोगे तो मैं बहुत प्रसन्न हूँगा—वह तुमको पटक कर अपनी प्रतिष्ठा न जमा सकैगा और तुमने उसको पछाड़ा, तो वह दुष्ट या तो तुमको विष दे देगा या कपट से किसी जाल में फँसा लेगा और जब तक तुम्हारी जान न ले लेगा पिण्ड न छोड़ैगा—मैं बड़ा दुःखी हो कर तुमको विश्वास दिलाता हूँ कि आज उसके समान नीच, अभिमानी बलवान जवान, दूसरा नहीं है । वह मेरा भाई है तो क्या । तुम्हारे सामने ठीक ठीक सब बातैं कहूँ तो मुझे बड़ा दुःख हो और बहुत लज्जित होना पड़ै और तुम भी सुन कर चकरा जावो—

चाणूर—बहुत अच्छा हुआ जो मैं आपके पास आ गया—अब कलह वह मेरे सामने आया तो जिसका गाहक है वह भर पेट पा जायगा । जो उसके हाथ पैर न तोड़ डालूँ तो मेरा नाम चाणूर नहीं—परमेश्वर आप का भला करै—जो ऐसा न करूँ तो कुश्ती लड़ना छोड़ दूँ ।

अलिवर—परमेश्वर तुम्हारी सहायता करै, जाओ ! (चाणूर जाता है) अब मैं इस पहलवान को कुश्ती लड़ने को उतारू करूँगा—आशा है कि कलह उसका अन्त हो

जाय—क्या बात है जो मैं उससे इतना बुरा मानता हूँ ! वह सुशील है—शिक्षा न होने पर भी विद्वान है । पूरा उदार भी है । सब उसको चाहते भी हैं । इसमें भी सन्देह नहीं कि सब लोग उसको मानते हैं । मेरे नौकर तो उसको बहुत ही चाहते हैं—और मेरी बुराई करते हैं । पर अब ऐसा न होगा । यह पहलवान सब निपटा देगा—अब मुझे जल्द ही ऐसा उपाय करना चाहिये कि अपने भाई को भड़का दूँ और किसी बात की कमी नहीं है—(बाहर जाता है)

दूसरा स्थान ।

राजा के महल के सामने का मैदान ।

(रसलीना और सुशीला आती हैं)

सुशीला—मेरी प्यारी बहिन ! तुम उदास न रहो । हँसो बोलो ।

रसलीना—सुशीला प्यारी ! मैं कैसे प्रसन्न रहूँ—पिता के बनवास का मुझे बड़ा दुःख है—छिन भर भी नहीं भूलता ऐसे समय में तुमको उचित नहीं कि मुझसे हँसने बोलने को कहो ।

सुशीला—प्यारी बहिन ! इससे तो यह सिद्ध होता है कि मैं जितना तुम को चाहती हूँ उतना तुम मुझे नहीं चाहती—तुम्हारे पिता ने मेरे पिता को देश से निकाल दिया होता और मेरा तुम्हारा संग रहता तो मैं तुम्हारे ही पिता को अपना पिता समझ कर प्रीति करती—और जो तुम्हारा प्रेम सच्चा है तो तुमको भी ऐसा ही मानना चाहिये—

रसलीना—अच्छा बहिन! मैं तुमको प्रसन्न करने के लिये अपनी दशा भुलाये देती हूँ—

सुशीला—प्यारी, तुम जानती हो कि मेरे पिता के और कोई सन्तान नहीं है और न होगी—और इसमें भी सन्देह नहीं कि उनके मरने पर सब धन धाम की मालकिन तुम ही होगीं—क्योंकि मेरे पिता ने जो कुछ तुम्हारे पिता का ज़बरदस्ती छीन लिया है वह सब मैं तुम्हें अर्पण कर दूँगी, मैं अपने धर्म की सौगंद न पूरी करूँ तो परमेश्वर मुझे दण्ड दे—इसलिये, हे मेरी प्यारी बहिन! तुम उदास न हो।

रसलीना—अच्छा बहिन! तुम्हारी बात मान कर खेल कूद में जी बहलाया करूँगी—यह तो बताओ कि पुरुष के साथ प्रेम में आसक्त होने को तुम कैसा समझती हो—

सुशीला—मैं तुमसे सच कहती हूँ कि हँसी खेल के लिये पुरुष-प्रेम में आसक्त हो पर सचमुच किसी पुरुष से प्रेम मत करना और हँसी खेल में भी केवल इतना ही अनुराग चाहिये जिससे लाज न जाय और प्रतिष्ठा में बट्टा न लगे—

रसलीना—तो हम क्या रंग रचैं?

सुशीला—हम लोग चुपचाप बैठे इस चक्र के समान घूमने वाली भाग्य की दिल्लगी उड़ावें कि जिसको जैसा उचित है उसके साथ वह वैसी कृपा किया करैं।

रसलीना—ठीक है! यही करैं। क्योंकि भाग्य की विचित्र गति है। उसकी कृपा कहीं कहीं बहुतही अयोग्य हुआ

करता है—उसकी अंधाधुंध उदारता बहुधा स्त्रियों पर कृपा करने के समय बहुत ही धोखा खाती है—

सुशीला—सच है! क्योंकि जो स्त्रियाँ सुन्दरी होती हैं वह बहुधा सती नहीं होतीं और जिनको वह सती बनाती है वह बहुधा कुरूप होती हैं—

रसलीना—नहीं बहिन! तुम्हारी यह कहावत तो भाग्य की बात छोड़ कर प्रकृति नियम को प्रगट करती है—क्योंकि भाग्य के बल से संसारिक पदार्थों की प्राप्ति होती है—पदार्थों के प्राकृतिक बनावट के अनुसार भाग्य नहीं बनता।

(मूसरचंद आता है)

सुशीला—प्रकृति ने हमको ऐसी बुद्धि दी है कि भाग्य की हँसी उड़ावैं तो भी जब प्रकृति ने एक स्त्री को सुन्दरी बनाया है तो क्या वह भाग्यवश आग में नहीं गिर सकती? क्या भाग्य ने इस मूर्ख को इसी वास्ते तो नहीं भेजा है कि यह तर्क वितर्क यहीं पर समाप्त कर दिया जाय।

रसलीना—ठीक है, भाग्य प्रकृति के लिये बड़ा कठोर बन जाता है। विशेष कर उस समय, जब यह प्रकृति के बने बनाये गधे को प्राकृतिक बुद्धि की तीक्ष्णता काटने वाला बना देता है—

सुशील—मैं तो समझती हूँ यह काम भाग्य का नहीं है—प्रकृति ही का है जिसने हम लोगों की स्वाभाविक बुद्धियों को ऐसी दैवी बातों का विचार करने के लिये असमर्थ जानकर इस प्रकृति के बने बनाये गधे को हमारे लिये

सान का काम देने के लिये भेजा है—क्योंकि मूर्खों की मूर्खता बुद्धिमानों की बुद्धि पैनी करने के लिये सदा सान का काम दिया करती है—कहो जी चतुर ! कहाँ चले ।

मूसरचंद—कुमारी जी ! आप के पिता जी बुला रहे हैं ।

सुशीला—तुमही दूत बनाये गये ?

मूसरचंद—नहीं ! नहीं !! मान मर्यादा की कसम, मुझे आज्ञा मिली है कि आप को लिवा लाऊँ ।

रसलीना—मूर्ख दास ! तुमने यह सौगन्द कहाँ सीखी ।

मूसरचंद—एक सरदार से जिसने अपने प्रतिष्ठा की सौगन्द खा कर कहा था कि मालपूये अच्छे हैं और अपनी मान मर्यादा का शपथ खा के कहा था कि सरसों की रोटियाँ अच्छी नहीं हैं—परन्तु मैं सच कहता हूँ कि मालपूये अच्छे नहीं थे, रोटियाँ अच्छी थीं—तिस पर भी वह सरदार झूठा न ठहराया गया ।

सुशीला—तुम अपनी बुद्धि से यह सिद्ध कर सकते हो ?

रसलीना—तुम्हें क़सम है, अपनी बुद्धि के किवाड़ खोलो ।

मूसरचंद—आप दोनों सामने खड़ी हों और अपनी दाढ़ियों पर हाथ फेरें और अपनी दाढ़ियों की कसम खा कर यह कहें कि मैं पाजी हूँ ।

सुशीला—हमारी दाढ़ियों की कसम, जो हमारे होतीं, तुम पाजी हो ।

मूसरचंद—मेरे पाजीपने की कसम, जो मुझमें यह गुण हो तो मैं पाजी हूँ—पर जब आप ने उस चीज़ की सौहें

खाई है जो है ही नहीं तो आप झूठी क़सम खाने वाली नहीं कही जा सकतीं। ऐसेही वह सरदार भी झूठी क़सम खाने वाला नहीं ठहरा क्योंकि उसे कुछ मान मर्यादा थी ही नहीं—और जो कुछ थी भी तो वह उसको मालपूवों और रोटियों के देखने के पहिले ही गँवा चुका था।

सुशीला—बता तो किस को कह रहा है।

मूसरचंद—वही, जिसको राजा पुण्डरीक, तुम्हारे पिता, बहुत मानते हैं।

सुशीला—मेरे पिता की प्रीति होने ही से वह प्रतिष्ठावान हो चुका—उसको अब कुछ न कहना—नहीं तो किसी दिन इस अपराध में पीटे जाओगे।

मूसरचंद—बड़ा अचरज है कि जो काम बुद्धिमान लोग मूर्खता से कर बैठते हैं वह मूर्ख लोग बुद्धिमानी के साथ कह भी नहीं सकते।

सुशीला—सच है! तुम ठीक ही कहते हो। जब से कि उस थोड़ी सी बुद्धिमानी का जो मूर्खों में पाई जाती है मुख बन्द कर दिया गया है तब से वह थोड़ी सी मूर्खता जो बुद्धिमानों में मौजूद है बहुत फैलने लगी है। वह देखो! लीलाधर जी आते हैं।

रसलीना—और मुँह में बहुत से समाचार भरे हुये।

सुशीला—और वह सब हम लोगों को ऐसे दे देंगे जैसे कबूतर अपने बच्चों को चुगाते हैं।

रसलीना—हम लोगों का पेट भी समाचारों से भर जायगा—

सुशीला—यह और भी अच्छा होगा—इससे हम लोगों का मान बढ़ जायगा ।

(लीलाधर आता है)

लीलाधर जी ! कहिये क्या समाचार है ?

लीलाधर—सुन्दरी राजकुमारियो ! आप लोगों ने बढ़िया तमाशा न देखा ।

सुशीला—तमाशा ! कैसा ।

लीलाधर—किस रंग का ! मैं इसका क्या जवाब दूँ—

रसलीना—जैसा समझ में आवै ! जो भाग्य में हो ।

मूसरचंद—या जैसा कर्म में लिखा हो ।

सुशीला—अच्छा कहा—मानो खुरपे से रच दिया ।

मूसरचंद—जो मैं इस तरह टोंका जाऊँगा तो कहूँगा क्या ?

रसलीना—तब तुम ठोंके जाओगे ।

लीलाधर—राजकुमारियो ! आप लोगों ने मुझे घबरा दिया । मैं आपसे एक बढ़िया कुश्ती की बात कह रहा था जिसके देखने का अवसर आप लोगों ने खो दिया—

रसलीना—कैसी कुश्ती हुई ?

लीलधर—मैं आरम्भ की बात बताऊँगा । अगर आप लोगों का जी चाहै तो अन्तिम परिणाम भी देख लें—क्योंकि उसका बढ़िया अंश अभी बाक़ी है जिसको पूरा करने के लिये वह लोग यहीं आ रहे हैं ।

सुशीला—अच्छा ! वह आरंभ की बात कहो, जो बीत गई सो बीत गई ।

लीलाधर—देखिये ! वह बुड्ढा अपने तीनो लड़कों के साथ चला आ रहा है।

सुशोला—मैं इस प्रारम्भ को एक पुरानो कहानी से मिला सकती हूँ ।

लीलाधर—तीन साधारण युवक जिनका डील डौल सुन्दर और उभार अच्छा है।

रसलीना—जिनके गलों मे इश्तिहार लटक रहे हैं जिससे सब की वर्तमान अवस्था मालूम हो जाय।

लीलाधर—इन तीनों में से बड़े ने महाराज के पहलवान चाणूर से कुश्ती लड़ी थी—चाणूर ने बात की बात में उसे ऐसा पछाड़ा कि उसकी तीन पसलियाँ टूट गईं—और उसके जीने की बहुत कम आशा है—यही दशा दूसरे की भी हुई—और तीसरे की भी यही गति हुई—वह सामने पड़े हैं। वह बेचारा बुड्ढा आदमी जिसके ये तीनों लड़के हैं ऐसा हो रहा है कि देखने वालों की आँखों से आँसू निकल आते हैं।

रसलीना—राम ! राम !!

मूसरचंद—कहिये तो ! वह कौन तमाशा है जिसको इन कुमारियों ने खो दिया—

लीलाधर—यही जी ! जिसको मैं कह रहा हूँ ।

मूसरचंद—ऐसे ही लोग रोज रोज अधिक बुद्धिमान होते जाते हैं ! यह पहला ही अवसर है कि किसी आदमी की पसुली टूट जाना राजकुमारियों के लिये तमाशा होने की बात मैंने सुनी।

सुशीला—मैंने भी आज पहिले पहल सुनी ।

रसलीना—परन्तु ! क्या कोई और भी दूसरा बीर है, जो अपनी पसलियों के टूटने की मधुर ध्वनि सुनना चाहै । क्या और भी कोई पसलियाँ तुड़वाने को तैयार है ? बहिन ! क्या हम लोग यह कुश्ती देख सकैंगीं ?

लीलाधर—अगर आप लोग यहाँ ठहरैंगीं तो देखैंगीं । क्योंकि इसी जगह कुश्ती होगी—और वह लोग लड़ने के लिये तैयार हैं—

सुशीला—सचमुच ! सामने देखो ! वह लोग आ रहे हैं, लो ! अब हम लोग भी ठहर कर देख लें ।

(बाजे बजने का शब्द होता है)

[राजा पुण्डरीक, सरदार, आर्यनन्दन, चाणूर और सरदार आते हैं]

राजा—आओ ! जब तक यह जवान अपने हठ के बदले जोखिम न उठा लेगा न मानैगा ।

रसलीना—क्या यही आदमी लड़ैगा ?

लीलाधर—हाँ, यही ।

सुशीला—बहुत छोटा है । तो भी बली जान पड़ता है, जीत जाय तो अचरज नहीं ।

राजा—बेटी ! भतीजी !! क्या तुम दोनो कुश्ती देखने आई हो ।

रसलीना—हाँ महाराज, जो आप कृपाकर के आज्ञा दें ।

राजा—इन दोनों पहलवानों का जोड़ ऐसा बेमेल है कि इसमें तुम को शायद ही कुछ आनन्द मिलै—इस छोटे जवान पर मुझे दया आती है पर क्या करैं, यह मना करने से

मानता ही नहीं—तुम इससे बातचीत करो, तुम्हारे ही कहने से यह मान जाय।

सुशीला—लीलाधर जी! उसे यहाँ बुलाओ।

राजा—अच्छा उपाय करो! मैं इस जगह से टला जाता हूँ—

(राजा एक ओर चला जाता है)

लीलाधर—हे कुश्तीबाज़ पहलवान! तुमको राजकुमारियाँ बुलाती हैं।

आर्यनन्दन—मैं बड़ी नम्रता और भक्ति से उनकी सेवा में आता हूँ।

रसलीना—क्यों बहादुर! क्या तुमने चाणूर पहलवान से कुश्ती बदी है।

आर्यनन्दन—नहीं राजकुमारी, मुख्य चिनौती देने वाला तो वही है। पर मैं भी दूसरों के भाँति अपनी जवानी का बल जाँचने आगया हूँ।

सुशीला—सुनो महाशय! तुम्हारी अवस्था के विचार से तुम्हारा साहस बहुत बड़ा है—तुम इस पहलवान के बल का क्रूर प्रमाण अभी देख चुके हो—जो तुम अपने हृदय के नेत्रों से देखते या अपने विवेक से जानते कि तुम्हें इस साहस में क्या जोखिम है तो तुमको अवश्य निश्चय हो जाता कि किसी दूसरे समान बल वाले से लड़ना चाहिये—मैं तुम्हारी ही भलाई के लिये कहती हूँ कि अपनी रक्षा करो और इस काम से हट जाओ।

रसलीना—सुनो बहादुर! मान जाओ—इससे तुम्हारी प्रतिष्ठा में कुछ बट्टा न लगैगा—और हम राजा को समझा लेंगी और यह कुश्ती न होने पाये।

आर्यनन्दन—मैं आप से बिनती करता हूँ कि आप अपने ऐसे कठोर बिचारों से मुझे दण्ड न दें—मैं जानता हूँ कि आप ऐसी अलौकिक रूपवती देवियों की आज्ञा भङ्ग करना अपराध है—पर आप के सुन्दर नयन और मेरी भलाई की वाञ्छा मेरी बिनती मान कर मुझे कुश्ती लड़ने दें। जो मैं हार गया तो कोई लज्जा की बात नहीं क्योंकि मैं कभी भाग्यवान न था—जो मारा गया तो जानिये कि मेरी कामना यही है—इससे मेरे मित्रों की कुछ हानि नहीं क्योंकि मेरे लिये रोनेवाला कोई नहीं है—संसार को भी इससे कुछ हानि नहीं, क्योंकि संसार में मेरा कोई नहीं है—संसार में जिस जगह को मैं पूरा कर रहा हूँ वह मेरे खाली करने पर श्रेष्ठता से भरी जायगी।

रसलीना—अच्छा, जो थोड़ा बल मुझ में है मैं चाहती हूँ कि तुम में प्रवेश कर जाय।

सुशीला—और उसी के साथ मेरा भी।

रसलीना—तुम्हारा कल्याण हो। परमेश्वर ऐसा करै कि तुम्हारा बल अनुमान करने में मैंने धोखा खाया हो।

सुशीला—तुम्हारी मनोकामना पूरी हो।

चाणूर—आओ! कहाँ है वह वीर जो पृथिवी माता की गोद में सोने का बड़ा उत्सुक है।

आर्यनन्दन—तैयार हूँ साहब! यह काम मैं नम्रता से करना चाहता हूँ।

राजा—तुम एकही पकड़ लड़ सकोगे।

चाणूर—नहीं महाराज ! आप से बिनती है कि आप कभी उसको दूसरी पकड़ लड़ने के लिये आज्ञा न दें जो एकही बेर के लिये बड़ी कठिनता से तैयार हुआ है।

आर्यनन्दन—जान पड़ता है कि कुश्ती के पीछे तुम मेरी हँसी उड़ाओगे। छिः, कुश्ती के पहिले ठट्ठा करना उचित नहीं है, अच्छा ! अपने दाँव पेंच करो।

रसलीना—हे बहादुर ! भीम के समान तुम्हार पराक्रम हो जाय।

सुशीला—मेरे मन में आता है कि मैं किसी को दिखाई न देती और उस बलवान पहलवान को टाँग मार के गिरा देती।

(चाणूर और आर्यनन्दन कुश्ती लड़ते हैं)

रसलीना—वाह बहादुर ! वाह !!

सुशीला—अगर मेरे नेत्रों में बिजुली की शक्ति होती तो मैं बता देती कि इन में से कौम गिरैगा।

(चाणूर गिरता है, आनन्द ध्वनि होती है)

राजा—बस ! बस।

आर्यनन्दन—अच्छा महाराज ! सरकार से बिनती है कि अभी तो मेरा दम भी नहीं भरा—

राजा—चाणूर ! तुम्हारा क्या हाल है।

चाणूर—महाराज ! मुझसे कुछ कहा नहीं जाता।

राजा—इसको यहाँ से उठा ले जाओ। वाह बहादुर, तेरा क्या नाम है। (चाणूर को उठा ले जाते हैं)

आर्यनन्दन—सरकार ! मेरा नाम आर्यनन्दन है और मैं श्री रविनंदन जी का सब से छोटा बेटा हूँ।

राजा—मैं तो चाहता था कि तुम किसी दूसरे ही के पुत्र होते। लोक में तो तुम्हारा बाप प्रतिष्ठित प्रसिद्ध था पर हमने उसको सदा अपना दुश्मन ही पाया—जो तुम किसी दूसरे कुल में जन्में होते तो हम तुम्हारे इस काम से बहुत ही प्रसन्न होते पर तुम एक सुन्दर और सुशील युवक हो। हम चाहते हैं कि हम तुम अपना दूसराही बाप बतलाते।

(राजा पुण्डरीक—सेवक और लीलाधर बाहर जाते हैं)

सुशीला—बहिन ! अपने बाप की जगह पर जो मैं होती तो क्या ऐसा ही करती।

आर्यनन्दन—मैं श्रीरविनन्दन जी का पुत्र होने में अपनी बड़ी भारी प्रतिष्ठा समझता हूँ—मैं उनका सब से छोटा पुत्र हूँ—वंश पदवी को मैं पुण्डरीक राजा का राज पाने के लिये भी कभी नहीं छोड़ सकता।

रसलीना—मेरे पिता रविनन्दन से बड़ा प्रेम रखते थे—और सब लोग भी पिता जी ही के समान उनसे प्रेम रखते थे—जो मुझे यह बात पहिले मालुम होती कि यह उनके पुत्र हैं तो मैं रो धो कर जैसे बनता तैसे इनको इस काम से रोकती।

सुशीला—प्यारी बहिन ! हमें उचित है कि इसके पास जाकर धीरज दें। मेरे बाप का कठोर और द्वेष भाव देख कर मेरा हृदय टुकड़े टुकड़े हुआ जाता है। आर्य, तुमने अपनी योग्यता अच्छी तरह दिखा दी और इस समय तुमने ऐसा कर दिखलाया है जिसकी तुमसे आस न थी। जो इसी तरह अपना प्रेमप्रण भी निबाहोगे तो तुम्हारी प्रेमिका धन्य होगी।

रसलीना—वाह बहादुर (अपने गले का एक हार उसको देकर) कृपा कर के मुझ अभागिनी की ओर से इसको पहिनो—मैं इससे कहीं अधिक देसकती पर ख़ाली हाथ होने से लाचार हूँ—क्यों बहिन ! अब हम लोग चलें ।

सुशीला—बहादुर, तुम्हारा कल्याण हो ।

आर्यनन्दन—आप के कृपा का मैं कहाँ तक धन्यवाद दूँ ? मेरा सर्वस्व नष्ट हो गया है और मैं केवल निर्जीव पुतले के समान आप के सामने खड़ा हूँ ।

रसलीना—वह हम लोगों को फिर बुला रहा है। मेरे भाग्य के साथ मेरा गौरव भी नष्ट हो गया । मैं उससे पूछूँगी कि क्या चाहता है । क्या आपने मुझे बुलाया है । आप बहुत अच्छी कुश्ती लड़े । और आपने अपने शत्रु से बढ़कर एक को परास्त किया है ।

सुशीला—बहिन ! चलती हो ।

रसलीना—चलो ।

(रसलीना और सुशीला जाती हैं)

आर्यनन्दन—वह बार बार मुझे बुलाती हैं पर मैं बोल नहीं सकता ! क्यों ? आर्यनन्दन ! तुम हार गये । चाणूर या उससे भी अधिक किसी निर्बल ने तुम्हारे ऊपर अधिकार जमा लिया ।

(लीलाधर फिर आता है)

लीलाधर—सुनो बहादुर ! मैं मित्रभाव से तुम्हें सलाह देता हूँ कि इस जगह से टल जाओ—तुमने अपने को बहुत ऊँचे दरजे की प्रशंसा और प्रीति का पात्र सिद्ध किया है परन्तु राजा साहब का यह हाल है कि जो

कुछ तुमने किया है उसको वह उलटे भाव से देखते हैं--राजा साहब बड़े दुःशील हैं, मैं अपने मुँह से क्या कहूँ। तुम आप जान लो कि उनकी मति कैसी है ।

आर्यनन्दन—महाशय! आप बड़े योग्य हैं। मैं आपको धन्यवाद देता हूँ—कृपा करके यह बतलाइये कि जो दोनों अभी कुश्ती देख रही थीं इनमें राजा साहब की कन्या कौन थी।

लीलाधर—जो उसके बर्ताव पर ध्यान दिया जाय तो दोनों में उसकी कन्या कोई नहीं हो सकती। पर छोटी कुमारी उसकी कन्या है—और दूसरे देशनिकाले राजा की बेटी है जिसका राज उसने हर लिया है। उसको राजा ने अपनी कन्या के साथ रहने के लिये यहाँ रख लिया है। इन दोनों में आपस में सगी बहिनों से भी अधिक प्रीति है पर मुझे मालूम हुआ है कि कुछ दिनों से राजा साहब अपनी सुशील भतीजी के भी प्रतिकूल हो गये हैं—और उसका कारण केवल यही है कि सब लोग उसके अच्छे आचरण की बड़ाई करते हैं और उसके सुशील पिता के कारण उसके साथ सहानुभूति करते हैं—मैं निश्चय से कहता हूँ कि राजा साहब का कोप एकाएक प्रगट होगा—ऐ वीर, परमेश्वर तुम्हें सुखी रक्खे! किसी समय स्वर्ग लोग में अधिक प्रेम और जान पहचान होने की आशा रखता हूँ।

आर्यनन्दन—आपकी बातों से मैं बड़ा सन्तुष्ट हुआ। परमेश्वर आपका कल्याण करै (लीलाधर जाता है)। अब मुझे

एक बिपत्ति का स्थान छोड़ कर दूसरे कष्ट के स्थान में जाना पड़ैगा—निठुर राजा के पास से निठुर भाई के पास जाता हूँ! परन्तु हे देवी रसलीना! (बाहरजाता है)

तीसरा स्थान ।

राजभवन का एक कमरा ।

(सुशीला और रसलीना आती हैं)

सुशीला—क्यों, बहिन! क्यों, रसलीना! प्रेमदेव दया करो। बोलती क्यों नहीं।

रसलीना—नहीं! क्या कहूँ, व्यर्थ बकने से क्या होता है।

सुशीला—नहीं बहिन! तेरी बातें व्यर्थ नहीं होतीं—मुझ से कह, और कारण बता तो मैं चुप रहूँ।

रसलीना—तब तो ऐसी दो बहिनें होनी चाहिये—कि एक तो कारणों से चुप हो दूसरी बिना कारण ही पागल।

सुशीला—परन्तु क्या यह सब बेचैनी तुम्हारे पिता के कारण है।

रसलीना—नहीं! इनमें से थोड़ी मेरे पिता की सन्तान के कारण है? हाँ! यह कर्मक्षेत्र संसार कितना भयंकर काँटों से घिरा हुआ है।

सुशीला—बहिन! यह केवल छोटे छोटे काँटे हैं जो तेरे ऊपर हँसी में फेंके गये हैं—जो मैं रास्ता बचा के न चलूँ तो मेरा भी डुपट्टा इनमें उलझ जाय।

रसलीना—अपना डुपट्टा तो मैं इनसे अलग कर लेती। पर यह काँटा तो मेरे हृदय में चुभ गया है।

सुशीला—इसको निकाल डाल।

रसलीना—मैं उसको पाऊँ तो उपाय करूँ ।

सुशीला—आओ ! अपनी मनोकामनाओं के सङ्ग लड़ो ।

रसलीना—वह मुझसे बढ़ कर किसी लड़ने वाले का पक्ष ले रही हैं ।

सुशीला—परमेश्वर तुम्हें अच्छी मति दे कि गिरने के पहिले उचित समय पर अपने को संभाल सको । अब इन बातों को छोड़ कर यह बिचारना चाहिये, कि क्या यह संभव है कि एकाएक रविनन्दन जी के छोटे पुत्र पर तुम्हार इतना गहिरा प्रेम हो जाय ।

रसलीना—बड़े राजा हमारे पिता और इसके पिता में बड़ी प्रीति थी ।

सुशीला—तो इससे यह नहीं सिद्ध होता कि तुम्हें भी उसके पुत्र से बड़ी प्रीति माननी चाहिये—इस दलील से मुझको चाहिये कि उससे बहुत घृणा करूँ—क्योंकि मेरा पिता उसके पिता से बैर मानता है पर मैं तो आर्यनन्दन से घृणा नहीं करती ।

रसलीना—नहीं, नहीं, कृपा करके उसके साथ घृणा मत कर ।

सुशीला—क्यों नहीं ? क्या इस हिसाब से वह इसके योग्य नहीं है ।

रसलीना—नहीं, नहीं ! मुझे उस हिसाब से प्रीति मानने दे । वह मेरा प्रेमी है इस लिये तू भी उससे प्रीति कर । यह देख ! चाचाजी आते हैं ।

सुशीला—उनके नेत्र क्रोध से लाल हैं ।

(सरदारों के साथ राजा पुण्डरीक आता है)

राजा पुण्डरीक—रसलीना ! जितनी जल्दी हो सकै, जहाँ अपनी रक्षा समझो वहाँ चली जाओ पर मेरे राजभवन से निकल जाओ ।

रसलीना—चाचाजी ! मैं ।

राजा पुण्डरीक—बेटी ! तुम ! जो दस दिन पीछे मेरे राजभवन के दस कोस के भीतर कहीं मिल जाओगी तो तुम्हारा सिर काट लिया जायगा ।

रसलीना—आपकी सेवा में मेरी यह बिनती है कि मेरा अपराध बता दीजिये—जहाँ तक मैं जानती हूँ जो मुझे ज्ञान है जो मैं अपनी बासनाओं को जानती हूँ, जो मैं स्वप्न नहीं देखती हूँ, या पागल नहीं हूँ (और मुझे विश्वास है कि मैं पागल नहीं) तो प्यारे चाचाजी ! मैं सच कहती हूँ कि कभी मैंने आप का कुछ अपराध करने का ध्यान भी नहीं किया ।

राजा—सब राजद्रोही ऐसी ही बातें कहते हैं—उनके कहे हुये शब्दों से उनके मन की शुद्धि का सम्बन्ध हो तब तो वह ऐसे निर्दोष हैं जैसे क्षमा—तू अच्छी तरह जान ले कि मैं तेरा विश्वास नहीं करता ।

रसलीना—पर आप के न विश्वास करने से मैं राजद्रोहिणी नहीं हो सकती । कोई ऐसी बात बतलाइये जिससे इसका प्रमाण मिलै ।

राजा—तू अपने बापकी बेटी है ! बस यही पक्का प्रमाण है ।

रसलीना—वही अपने बाप की बेटी मैं तब भी थी जब आप ने यह राज लिया था—और जब आपने मेरे पिता को

देश निकाला था तब भी मैं वहीं थी—महाराज! राजद्रोह वंश के प्रभाव से नहीं होता और हो भी सकता है तो उससे मुझको क्या? क्योंकि मेरा बाप राजद्रोही न था। इसलिये महाराज! भूल कर भी मेरी अधीनता पर मुझे विश्वासघातिनी न समझिये।

सुशीला—प्यारे महाराज मेरी भी सुनिये।

राजा—सुशीला। मैंने इसे तुम्हारे ही लिये रोक रक्खा था नहीं तो यह भी अपने बाप के साथ मारी मारी फिरती।

सुशीला—तब मैंने इसके रोकने के लिये आपसे बिनती नहीं की थी! आपने अपनी ही खुशी से दया कर के यह काम किया था—उस समय मैं बहुत छोटी थी और इनके गुणों को बिलकुल जान न सकती थी—पर अब मैं अच्छी तरह जान गई हूँ—यह राजद्रोहिणी है तो मैं भी वही हूँ—हम दोनों सदा एक साथ सोई हैं, एक साथ उठी हैं, एक साथ खेला खाया है और जहाँ कहीं हम गई हैं सारस की जोड़ी के समान साथही साथ गयी हैं—और अब तक यह जोड़ी नहीं बिछुड़ी।

राजा—तुम इसका कपट नहीं समझ सकतीं—इसकी मधुरता, इसका मौन, सन्तोष सब के मन को सहज ही में खींच लेते हैं और सब इस पर दया करने लगते हैं—तुम मूर्ख हो! इसके साथ से तुम्हारे नाम में बट्टा लगता है—इसके चले जाने पर तुम्हारा शील और गुन अधिक प्रकाश होगा। इसलिये चुप रहो। जो आज्ञा इसको हमने दी है वह अटल और पक्की है—इसको देश निकाले का दण्ड दिया जाता है।

सुशीला—महाराज! यही दण्ड मुझको भी दीजिये। मैं इनके बना नहीं जी सकती।

राजा—तुम मूर्ख हो—भतीजी! तुम जाने की तैयारी करो—मैं सच कहता हूँ कि जो तुम आज्ञापालन न करोगी तो अपनी जान से हाथ धोओगी।

(सरदारों सहित राजा जाता है।)

सुशीला--मेरी दीन रसलीना! कहाँ जाओगी? आओ! आओ!! हम तुम बाप बदल लें। मैं तुम्हें अपना बाप दूँगी। मैं तुम्हें समझाये देती हूँ कि तुम मुझ से बढ़कर व्याकुल न होना।

रसलीना—मुझे तुमसे बढ़ कर दुखी होने के लिये बहुत से कारण हैं।

सुशीला—बहिन! तुम्हारे लिये ऐसा कोई कारण नहीं है। मैं तुमसे बिनती करती हूँ तुम सोच न करो। क्या तुम नहीं जानती कि मेरे पिता राजा ने मुझे देश निकाल दिया है।

रसलीना—नहीं नहीं!

सुशीला—नहीं क्यों, तब तो रसलीना तुझ में वह प्रेम नहीं है, जिससे यह शिक्षा मिलती है कि हम और तुम एक हैं—क्या हम लोगों का बिछोह होगा? मेरी बहिन! क्या हम लोगों को अलग होना पड़ैगा? नहीं; नहीं। मेरे पिता को चाहिये कि कोई दूसरा वारिस ढूढ़ैं—हम लोग ऐसी सलाह करैं कि किसी तरह यहाँ से भाग चलैं। यह जगह का बदलना अपने ही लिये न समझो—इस दुःख को अकेली भोगने का उपाय मत

करो और मुझे अकेली न छोड़ो। यह नीला आकाश हमारे शोक से मलीन हो रहा है, तुम्हें इसी की सौगन्ध—बोलो, तुम्हारा क्या मन है? सच सच बताना, मैं तेरे साथ चलूँगी।

रसलीना—कहाँ चलैं।

सुशीला—आरण्यक बन में चल कर चाचा को ढूढ़ैं।

रसलीना—बड़े शोक की बात है। हम कुमारियों को इतनी दूर चलने में न मालूम क्या क्या बिपत्ति झेलनी पड़ैं—सोने के चोर ऐसे लागू नहीं होते जैसे जवान औरतों के।

सुशीला—मैं मैले कुचैले कपड़े पहिन लूँगी और मुँह पर मिट्टी पोत लूँगी और तुम भी ऐसा ही करना—बस बिना किसी भय के हम लोग रास्ता पार कर लेंगे।

रसलीना—मैं तनिक लम्बी हूँ। मैं मरद का भेस बना लूँ, कमर में तलवार लटका लूँ और हाथ में बल्लम ले लूँ। स्त्रीपने का जो कुछ भय है वह हृदय में छिपा रहै—जैसे कोई कोई कायर लोग बनावट से अपने को बीर जानते हैं उसी तरह हम भी सूरमा बनैंगी।

सुशीला—जब तुम मरद का भेस बना लोगी तब मैं तुम्हैं क्या कह के पुकारूँगी।

रसलीना—मुझे तो भगवान के भक्त का नाम बड़ा प्यारा लगता है इसलिये मुझे महावीर कहना। और तुमको कौन नाम अच्छा लगता है।

सुशीला—ऐसा नाम जो मेरी दशा के अनुसार हो। इसलिये सुशीला के जगह मुझे दुःखिनी कहना।

रसलीना—क्यों बहिन ! जो हम राजभवन से उस फक्कड़ मूसरचन्द को भी उड़ा ले चलैं तो कैसा हो ? मैं तो समझती हूँ कि रास्ते में उससे बहुत सुख मिलैगा ।

सुशीला—वह हमारे साथ सारे संसार भर में घूमने को तैयार हो जायगा—उसको हम राज़ी कर लेंगीं—अब चल के अपने गहने और रुपये पैसे इकट्ठा कर लें—और ऐसी अच्छी साइत और ऐसे विघ्न रहित रास्ते से निकल चलैं कि जिसमें हम लोगों के भागने पर जो हम लोगों को ढूढ़ैं तो कहीं भी पता न चलै—ऐसा करने से हमारे मन को सन्तोष रहैगा क्योंकि हम लोग अपनी स्वतन्त्रता से जाती हैं, कुछ देश निकाले से नहीं (बाहर जाती हैं)

दूसरा अङ्क ।

(पहिला स्थान—आरण्यक बन)

(बड़े राजा—अमीचन्द—और कुछ सरदार बनवासियों के भेस में आते हैं।)

बड़े राजा—मेरे साथियो और बनवासी भाइयो ! क्या पुरानी सादी चाल से रहना सहना नई रोशनी के भड़कीले आडम्बरों से बढ़कर मनको शान्त और जीवन को सुखी नहीं करता। क्या यह तपोबन राजभवन से अधिक सोहावना और सुरक्षित नहीं है—हमको यहाँ श्रीरामचन्द्र जी के बनबास के समान दुःख का केवल लेशमात्र है। जब कड़ाके का जाड़ा पड़ता है और देह को थर थर कँपाने वाली हवा चलती है तब हम मन से मुसुकाते हुये कहते हैं कि इन बातों का

दुःख मत मान । ये ऐसे मन्त्री हैं जो असली दशा याद दिलाते हैं—बिपत्ति के फल बहुत अच्छे हैं कि जो साँपों के समान कुरूप और जहरीले होने पर भी अपने सीस में बहुमूल्य मणि रखते हैं। इस एकान्त वास रूपी शान्तिमय जीवन में मुझे वृक्षों के पत्तों में शिक्षायें बहते झरनों में सद्ग्रन्थ, पत्थरों में उपदेश, वस्तु वस्तु में उत्तम उत्तम बातें दिखाई देती हैं।

अमीचन्द—मैं इस दशा को बदलने की इच्छा नहीं रखता—श्रीमान् श्रेष्ठ महात्मा हैं जो ऐसी ऐसी महा बिपत्तियों में भी शान्तचित्त और प्रसन्न रहते हैं।

बड़े राजा—आओ! हरिनों का शिकार करने चलें—परन्तु मुझे बड़ा दुःख मालूम होता है कि इस बन-नगर के असली निवासी, सुन्दर सींगों वाले हरिन शिकारियों के तीरों से बेधे जाते हैं।

पहिला सरदार—महाराज! सच है। बिचारवान् जयकृष्ण इसपर बड़ा शोक प्रगट करता है कि यह आपका काम आपके उन भाई के कामों से जिन्होंने आपको बनबास दिया है बढ़कर बुरा है। आज अमीचन्द्र और मैं उसके पीछे पीछे छिप कर धीरे धीरे गये जहाँ वह नाले के किनारे बड़े भारी बरगद के वृक्ष के नीचे लेटा था। उसी जगह एक दुःखी अकेला मृग जो किसी शिकारी के तीर से घायल था अपनी आयु की घड़ियाँ पूरी करने के लिये चला आया था और हे नाथ! उसने ऐसे ज़ोर से दुःख भरी ठण्ढी साँस ली और उसका पेट इतना फूल आया कि मानो अब फटाही चाहता है—और उसकी आखों से बड़े

बड़े आँसू जो गिरते थे उन्हें देख देख कर मेरा हृदय पिघला जाता था—और इस दशा में वह भोला हिरना जिसको जयकृष्ण बड़े ध्यान से देख रहा था अपने आँसुवों से नाले का जल बढ़ाता हुआ खड़ा रहा।

बड़े राजा—परन्तु जयकृष्ण ने क्या कहा ? क्या उसने यह देख कर कुछ नीति की बातें नहीं कहीं।

पहिला सरदार—हाँ महाराज! अनेक दृष्टान्तों से। पहिले ही उसने उस हिरन के उस नदी किनारे रोने पर कहा कि हे दीन हिरण! तू सांसारिक आदमियों के समान अपनी मृत्यु की इच्छा प्रगट कर रहा है—और यद्यपि इस नदी में जल कम नहीं है तो भी तेरे आँसुवों की धारा से इसका जल बढ़ रहा है। इसके पीछे उसके साथियों का उस दुखी हिरण को अकेला छोड़ देने पर कहा—यह सच है, कि बिपत्ति में सब साथ छोड़ देते हैं। इसी अवसर पर हिरनों का एक झुण्ड उसके पास हो कर निकला पर किसी ने उसकी ओर देखा भी नहीं। तब कहने लगा कि हे मोटे ताजे बनवासी भाइयो! चले आओ, संसार का यह हालही है—भला इस दुःखी और असहाय साथी को ओर तुम काहे को देखोगे—इसी तरह बड़े आक्षेप की दृष्टि से वह सब देश, नगर, राजभवन, और कहाँ तक कहूँ हमारे जीवन को भी देखता है—और कहता है कि हम भी राजहरन करनेवाले और प्रजा को सताने वाले हैं—बरन् इससे भी निकृष्ट हैं क्यों कि हम इन बनवासी जीवों के स्वभाविक रहने के स्थानों में उन्हें डरवाते और मारते हैं।



बड़े महाराज—और क्या तुम उसको ऐसे ही बिचार करते हुये छोड़ कर चले आये ।

दूसरा सरदार—हाँ महाराज ! मैं उसको उस हाय करते हुये हिरन के ऊपर करुणा से रोते और नीति बचन बोलते हुये वहीं छोड़ कर चला आया ।

बड़े महाराज—अच्छा मुझे वह जगह बताओ मैं उस से ऐसीही करुणा के दशा में मिलना चाहता हूँ—क्योंकि इस समय वह ज्ञानी हो गया है ।

पहिला सरदार—चलिये, मैं बहुत जल्द आप को वहीं पहुँचा दूँगा । (सब जाते हैं)

स्थान दूसरा ।

राजभवन का एक कमरा ।

(राजा पुण्डरीक—सरदार और परिजन आते हैं)

राजा पुण्डरीक—ऐसा भी हो सकता है कि किसी ने उनको न देखा हो ? असम्भव है । हमारे कुछ राज कर्मचारी ज़रूर छिप कर मिले हुये हैं—बिना उनके यह काम हो ही नहीं सकता ।

पहिला सरदार—मैंने जहाँ तक पूँछा जाँचा किसी ने उनको नहीं देखा—उनकी टहलिनियों ने रात को पलंग पर सोते देखा था—और सबेरे देखा तो दोनों का पता नहीं ।

दूसरा सरदार—महाराज ! वह नीच मूसरचन्द भी जिसकी बातों पर श्रीमान् हँसा करते थे नहीं मिलता—राज

कुमारी की दासी हरदेइया भी यह कहती है कि एक समय छिप कर उसने आप की बेटी और भतीजी को उस पहलवान की बड़ाई करते सुना था जिसने कुछ दिन पहिले बली चाणूर को पछाड़ा था और वह अनुमान करती है कि जहाँ वह गयी होंगी वह जवान भी ज़रूर साथ गया होगा ।

राजा पुण्डरीक—किसी को उसके भाई के पास भेजो । उस पहलवान को यहाँ पकड़ लाओ और जो यहाँ न हो तो उसके भाई को मेरे सामने लाओ, उसीसे उसका पता लगा कर फिर यहाँ लाने के लिये तनमन से सब उपाय करो—(सब जाते हैं)

स्थान तीसरा ।

(अलिवर के घर के सामने)

(आर्यनन्दन और अनन्त आते हैं)

आर्यनन्दन—कौन है ?

अनन्त—क्या मेरे छोटे स्वामी हैं ? ओ हो ! मेरे प्यारे स्वामी ! ऐ मेरे पुराने स्वामी रविनन्दन जी की याद दिलाने वाले ! क्यों, आप यहाँ क्या करते हैं ? आप धर्मशील क्यों हैं ? सब लोग आप को क्यों इतना चाहते हैं ? आप कोमल स्वभाव, बली और साहसी क्यों हैं ? आप के मन में उस दुष्ट राजा के बली पहलवान चाणूर को पछाड़ने की अभिलाषा क्यों हुई थी । आप का जस आप से भी पहिले यहाँ बड़ी जलदी से आ

पहुँचा। स्वामी! आप को यह नहीं मालूम कि इस विचित्र संसार में कितने ही आदमियों के लिये उनके गुणही उनके शत्रु बन जाते है? आपको भी ठीक यही दशा है—मेरे सुशील स्वामी! इस समय आपके शुभ गुण ही आपके शत्रु बन गये हैं।

आर्यनन्दन—क्यों? क्या बात है।

अनन्त—मैं आप को कैसे कहूँ! इस दरवाजे के भीतर न जाइये—इस घर के भोतर आप के गुणों के पूरे शत्रु बास करते हैं। आपके भाई ने, नहीं भाई नहीं, आपके पिता के पुत्र ने। पुत्र भी नहीं, मैं उसको पुत्र कैसे कहूँ—ऐसे उत्तम पिता का पुत्र जिसका नाम मैं लेने ही को था! आप की प्रशंसा सुन ली है और उनका विचार है कि जिस घर में आप सोते हैं आज रात को उसमें आग लगा कर आपको जला दे—इसमें वह सफल न हुआ तो वह आपका प्राण लेने के लिये दूसरा उपाय रचैगा—मुझे गुप्त रीति से यह भेद मालूम हो गया है—अब यह घर नहीं है केवल आपके बध की जगह है—आप इससे घृणा करें, डरते रहें, इसके भीतर पाँव न रक्खें!

आर्यनन्दन—क्यों? अनन्त! तो हम कहाँ जाँय।

अनन्त—आप चाहे जहाँ जाँय, यहाँ न रहें।

आर्यनन्दन—क्या तुम्हारे मनमें यह है कि यहाँसे चला जाऊँ और भीख मागूँ। या चोरी करूँ या तलवार के बल डाँका मारकर पेट पालूँ—इसके सिवाय और क्या करूँगा? यह नहीं जानता कि क्या करूँगा? पर चाहे जैसे जिऊँ यह काम तो मुझसे न होगा—इससे तो दुःशील भाई की आधीनता ही मान कर जीवन बिताना अच्छा है।

अनन्त—ऐसा न कीजिये ! मेरे पास ५०० रुपये हैं जो मैंने आप के पिता की सेवा कर के थोड़ा बचा कर जमा किया है और जिनको मैंने इसलिये बचा रक्खा था कि बुढ़ापे में जब हाथ पैर न चलेंगे और कोई न पूँछेगा तब इस पूँजी से दिन काटूँगा । आप यह धन ले लें, और जो भगवान चिड़ियाँ चुनगुन सब का पालन करता है मेरा भी पालन करेगा । और यह शुभ बिचार ही बुढ़ापे में मुझे बड़ा सन्तोष देगा। लीजिये यह धन मौजूद है। यह सब आप की भेंट है। और मुझे भी अब आप अपनी सेवा में लीजिये—मैं बूढ़ा हूँ पर अभी मुझमें बहुत शक्ति है क्योंकि अपनी जवानी में मैंने गरम और नशीली वस्तुओं का सेवन नहीं किया—और जान बूझ कर बल वीर्य घटाने वाले कोई काम नहीं किये—इसलिये मेरा बुढ़ापा एक ऐसे जाड़े के समान है जो ढरने पर भी उत्तम है। मुझे अपने साथ ले चलिये—मैं बूढ़ा हूँ पर आप के सब काम जवान के बराबर करूँगा ।

आर्यनन्दन—वाह भाई बुड्ढे ! पुराने ज़माने के सच्चे सेवक अपना काम धर्म जान कर करते थे, इनाम के लालच से नहीं। तुम में सब अच्छे गुण मौजूद हैं ! तुम इस युग के मनुष्य नहीं हो, क्योंकि आजकल अपनी बढ़ती का लालच न हो तो कोई मेहनत नहीं करता और बढ़ती होने पर उसही को कि जिससे बढ़ती हुई है तनिक बात पड़ने पर छोड़ देता है। तुम धन्य हो अनन्त ! तुम बिलकुल निःस्वार्थ हो ! पर भाई बुड्ढे ! तुम इस समय एक ऐसे पेड़ के सींचने रोपने का श्रम उठा

रहे हो जिसमें एक कली भी लगने की आशा नहीं देख पड़ती। पर मैं तुम्हारी बात मानता हूँ—हम दोनों साथ चलेंगे—और तुम्हारी जवानी की कमाई ख़र्च करने के पहिले कोई छोटी मोटी अच्छी जीविका ढूँढ़ लेंगे।

अनन्त—चलिये! जब तक दम में दम है मैं सच्चाई और भक्ति के साथ आपकी सेवा करूँगा—१७ बर्ष की अवस्था से यहाँ हूँ अब लगभग ८० वर्ष का हूँ—पर अब मैं यहाँ न रहूँगा—सत्तरहवें वर्ष की अवस्था में बहुधा मनुष्य रुपया कमाने में लग जाते हैं—पर ८० वर्ष की अवस्था में यह अनुचित है—तौ भी मेरी यही अभिलाषा है कि स्वामी से उरिन हो कर मरूँ।

चौथा स्थान।

आरण्यक बन।

(रसलीना लड़के के भेस में सुशीला गड़रिन के भेस में और मूसरचंद आते हैं।)

रसलीना—मेरा मन बहुत थक गया है।

मूसरचंद—मेरे पाँव न थकते तो मैं मन की तो कुछ परवाह नहीं करता।

रसलीना—मेरे मन में आता है कि स्त्रियों की तरह रोऊँ पर पुरुष का रूप धरा है, यह रूप कलंकित हो जायगा। पर मुझे इस बेचारी को धीरज धराना उचित है क्योंकि धोती और पगड़ी को चाहिये कि साड़ी के साथ वही बर्ताव करैं जो बीर के योग्य हो—इसलिये प्यारी! धीरज धरो।

सुशीला—कृपा कर के मुझे क्षमा करो और मुझे सँभालो ! मैं अब आगे नहीं चल सकती ।

मूसरचंद—मुझसे पूछो तो सम्भालने के बदले मैं तुमको क्षमा कर सकता हूँ—मैं तुमको ले भी चलूँ तो तुझे एक कौड़ी भी न मिलेगी क्योंकि मैं जानता हूँ कि तुम्हारे पास कुछ नहीं है ।

रसलीना—अच्छा अच्छा ! यह आरण्यक बन है ।

मूसरचंद—एँ ! मैं आरण्यक बन में हूँ तो और भी मूर्ख हूँ—जब मैं घर में था तो इससे अच्छी दशा में था—परन्तु मुसाफ़िरों को सन्तोष रखना चाहिये ।

रसलीना—प्यारे मूसरचंद ! ऐसा ही करना चाहिये देखो यह कौन आता है ? एक जवान और एक बुड्ढा दोनों बातें कर रहे हैं ।

(करन और सालिक आते हैं)

करन—यह वह राह है जिससे वह और भी बुरा माने ।

सालिक—अरे करन ! मेरी तो सुन ! तुझे कुछ पता है कि मेरा उसपर कितना अनुराग है ।

करन—क्यों नहीं जानता ! मैं भी जवानी में किसी पर आसक्त था ।

सालिक—नहीं करन ! तुम बुड्ढे हो तुम क्या जानो ? मानता हूँ कि जवानी में तुम किसी पर ऐसे आसक्त थे कि रात को बिछौने पर पड़े पड़े आहैं भरते थे—पर जो तुम्हारा अनुराग इतना होता जितना मेरा उसपर है तो तुम न जानै कौन कौन बिकट काम करते—मैं सच कहता हूँ कि कभी कोई प्रेम में ऐसा नहीं फँसा जैसा कि मैं फँसा हूँ ।

करन—मुझे अब याद नहीं पर इस प्रेम के बस हजारों बिकट काम मैंने भी किये हैं।

सालिक—तब तो तुम्हारा प्रेम ऐसा सच्चा न था जैसा मेरा है—तुम सच्चे प्रेम के बस होकर इतने विकट काम किये होते तो क्या तुमको उनमें से एक भी याद न होता—तुम कभी किसी स्त्री पर आसक्तही नहीं हुये—और जो मेरी तरह बैठ कर अपनी प्राणप्यारी का बखान करते करते सुननेवालों के कान बहिरे न किये तो तुम कभी आसक्तही न थे—जो मेरी तरह तुम अपने सब साथियों को एक दम छोड़ कर चल नहीं दिये तो तुम कभी आसक्त ही नहीं हुये—हाय फुलिया! हाय फुलिया! (जाता है)

रसलोना—हाय बेचारे गड़रिये! मैंने तेरा घाव ढूँढ़ते ढूँढ़ते अभाग्य बस अपना घाव ढूँढ़ निकाला।

मूसरचंद—और मैंने अपना—मुझे उस समय की याद आई जब मैं आसक्त था। और मैंने अपनी तलवार पत्थर पर पटक कर मारा और उससे कहा था कि तू मेरी प्यारी से रात को मिला, इसीसे मारा जाता है। मैंने उसके कपड़ा धोने के पाट को और उसकी गाय के थनों का जिन्हें वह अपने सुन्दर हाथों से दुहती थी चूमा था। और मैंने उसके बदले मटर की बेल से प्रेम की बातें कही थीं और उसकी दो फली तोड़ कर उसे देकर आँसू बहाते यह कहा था कि कृपा करके इसे लो। सच्चे प्रेमी हम लोग बिचित्र धन्धों में फँसते हैं—पर जैसे प्रकृति में सब नष्ट हो जाता है वैसे ही प्रेम की तरङ्ग में सारी बुद्धि भी नष्ट हो जाती है।

रसलीना—तुमको प्रेम का जितना अनुभव है उससे कहीं बढ़कर बुद्धिमानी की बातें करते हो ।

मूसरचंद—जी नहीं, जब तक प्रेम में अन्धा होकर अपने पैर की नली न तोड़ लूँ तब तक मुझे अपनी बुद्धिमानी का विश्वास सही नहीं ।

रसलीना—हे परमात्मा ! इसका प्रेम बहुत कुछ मेरे प्रेम सा ही है ।

मूसरचंद—मेरे सा ! पर अब मेरा प्रेम कुछ कुछ फीका पड़ा जाता है ।

सुशीला—आप दोनों में से कोई कृपा करके सामनेवाले आदमी से पूछें कि एक मोहर लेकर कुछ खाने को दे सकता है । मैं भूख के मारे मरी जाती हूँ ।

मूसरचंद—ओ गँवार !

रसलीना—चुप रे ! यह तेरा भाई बन्द नहीं है ।

करन—कौन बुला रहा है ।

मूसरचंद—भले मानुस ।

करन—तो कोई संकट पड़ा है ।

रसलीना—ठहरो तो ! राम राम भाई ।

करन—जै राम जी की ! परमेश्वर आप लोगों का भला करे ।

रसलीना—भाई तुमसे एक बिनती है कि प्रेम से अथवा धन के बदले इस बन में पहुनाई हो सकै तो हमको कोई ऐसी जगह बता दो जहाँ हम लोग कुछ खा पी लें और आराम करैं—हमारे साथ यह क्वारी जो रास्ता चलने से बहुत थक गई है बिना अन्न पानी के मुर्झा रही है ।

करन—भाई ! मुझे इसपर बड़ी दया आती है और तुमसे ज़ियादा मैं चाहता हूँ कि इसका दुःख दूर कर सकता पर मैं दूसरे का नौकर हूँ उसकी भेड़ बकरी चराया करता हूँ, और मेरा मालिक ऐसा मक्खीचूस है कि उसको पहुनाई के धरम से स्वर्ग सुख लाभ का कुछ बिचारही नहीं है इसके सिवाय उसका घर द्वार भेड़ें और खेत सब बेचा जा रहा है, वह घर पर नहीं है इससे आपको कुछ नहीं मिल सकता जिसको आप खा सकें। आप चलिये मैं आप को ले चलता हूँ और वहाँ आप का स्वागत अच्छी तरह होगा।

रसलीना—उसका घर बार और भेड़ें कौन मोल लेता है।

करन—वही गँवार आदमी जिसको अभी थोड़ी देर हुई इसी जगह आपने देखा था, पर उसको कुछ चाह नहीं है।

रसलीना—तो अगर कुछ बुराई न हो तो घर, वाड़ा और भेड़ बकरी सब मोल ले लो जो कुछ दाम लगेगा हम देदेंगे।

सुशीला—और मैं तेरी ।तनख़ाह बढ़ा दूँगी—मुझको यह जगह बहुत अच्छी लगती है—हम लोग सुख से यहीं रहेंगे।

करन—यह तो निश्चय है कि सब ज़रूर बिकेगा—आप मेरे साथ चलैं—आपको यह धरती, इसकी उपज पसन्द है, और ऐसे रहना चाहते हैं तो मैं इसमें आपकी पूरी सहायता करूँगा—और आपके धन से यह सब मोल ले लूँगा।

(सब लोग जाते हैं)

पाँचवाँ स्थान ।

बन का दूसरा भाग ।

(अमीचन्द और जयकृष्ण आदि आते हैं)

अमीचन्द—(गाता है)

गावै आवै कोइलिया माती ॥ टेक ॥
हरित प्रफुल्लित तरु तर बासा ।
प्रेम भवन सुख नींद सुपासा ॥
सकल शोक भय रहित सुहावन ।
मधुर अलाप मंजु मनभावन ॥ गावै० ॥
यहि बिधि जो मेरे सँग रहै ।
कष्ट शीत ऋतु के सो सहै ॥
आनन्द शोक दोऊ सम मानी ।
प्रेम निवाह करै सोइ ज्ञानी ॥ गावै० ॥

जयकृष्ण—और, और गाओ ।

अमीचन्द—हे महाशय जयकृष्ण ! इस गीत से तुम्हारा मन व्याकुल हो जायगा ।

जयकृष्ण—मैं इसके लिये आपका बड़ा गुन मानूँगा । और कहिये जैसे नेवला अण्डे चूस लेता है वैसेही गीत में से मैं भी चिन्ता को चूस लूँगा—कृपा करके और गाइये ।

अमीचन्द—मेरा गला भर्राया है । मेरे गाने से आपका चित्त प्रसन्न नहीं हो सकता ।

जयकृष्ण—मैं यह नहीं चाहता कि आप मुझे प्रसन्न करैं—मैं चाहता हूँ आप गावैं—दो चौपाई और कहिये । क्या इनको आप चौपाई कहते हैं ?

अमीचन्द—जी जयकृष्ण ! आप इनको क्या कहना चाहते हैं ।

जयकृष्ण—नहीं नहीं ! मुझको इनके नाम से कुछ मतलब नहीं । ये मेरे ऋृनियाँ नहीं हैं—आप गाइये ।

अमीचन्द—अच्छा आपके कहने से गाता हूँ । अपना मन बह-लाने को नहीं गाता ।

जयकृष्ण—अच्छा । तब तो मैं आपका बड़ा गुन मानूँगा—कहते हैं कि इस तरह एक दूसरे की प्रशंसा करना दो लालची लंगूरों के मिलाप के समान है । जब कोई उपकार मानने की बात कहता है तो मुझे जान पड़ता है कि मैंने उसे एक पैसा दिया और उसने मुझे निहोरा दिया है । आइये, गाइये ! और जो न गावैं वह चुपरहैं ।

अमीचन्द—अच्छा ! मैं वह गीत पूरा कर दूँगा । पर जब राजा इस पेड़ के नीचे जलपान करने लगैं तब आप लोग छिप जायँ—आज वह सवेरे से आप लोगों को ढूँढ़ रहे हैं ।

जयकृष्ण—और मैं दिन भर आज उनसे मिलना नहीं चाहता हमारी सभा पर उनके बहुत तर्क बितर्क हैं । मुझे भी उनकी भाँति बहुत सी बातों का बिचार है । परमात्मा का धन्यवाद है कि उनके लिये अभिमान नहीं करता आओ ! गाना हो । (सब मिल कर गाते हैं)

गावै गावै कोइलिया माती ॥
जो इच्छा तृष्णा तजि देइ ।
सहित विवेक बिरागहिं लेइ ॥
यथा लाभ सन्तोषहि धारी ।
जग महँ सोइ सब भाँति सुखारी ॥
गावै गावै कोइलिया माती ॥

शीत उष्ण सुख दुख सम जानै ।
ब्रह्म सत्य जग झूँठ प्रमानै ॥
परम पुनीत शाँत मन होई ।
जीवन मुक्त कहिय नर सोई ॥
गावै गावै कोइलिया माती ॥

जयकृष्ण—इसी राग में अपनी थोड़ी बुद्धि से कल मैंने भी कुछ पद रचे हैं ! आपको सुनाऊँगा ।

अमीचन्द—और मैं उन्हें गाऊँगा ।

जयकृष्ण—(गाता है)

टेरे टेरे पपिहरा पापी ॥ टेक ॥
हठ बस सब छोड़ा घर बार ।
सिर पर सिड़ जब हुई सवार ॥
जो फिरते हैं मारे मारे ।
आवैं सो सब पास हमारे ॥
टेरे टेरे पपिहरा पापी ॥
उनके साथी हैं बहुतेरे ।
घूमैं इहाँ काल के प्रेरे ॥
बक बम बक बम पेलैं डंड ।
संड मुसंड और मुस्टंड ॥

अमीचन्द—यह बक बम क्या है ।

जयकृष्ण—अजी यह शंशकोरत का शब्द गदहों के घेरने में बोला जाता है । मैं सोने जाता हूँ । नींद न आई तो सब को कोसूँगा ।

अमीचन्द—और मैं राजा साहब को ढूँढ़ने जाता हूँ—भोजन तैयार है । (अलग अलग बाहर जाते हैं)

छठा स्थान ।

बन का दूसरा भाग ।

(आर्यनन्दन और अनन्त आते हैं)

अनन्त—मेरे प्यारे स्वामी ! अब मुझसे नहीं चला जाता मारे भूख के मरा जाता हूँ ! अब यहीं बैठता हूँ—इसी जगह मेरी मिट्टी मिट्टी में मिल जायगी । स्वामी ! आप का कल्याण हो ।

आर्यनन्दन—क्यों, अनन्त ! कैसे हो ? क्या हिम्मत हार गये । धीरज धरो । मन को ढाढ़स बँधाओ इस बीहड़ में कोई शिकार मिल गया तो अभी लाता हूँ—तुम बड़े समझदार हो । मेरे कहने से मौत को थोड़ी देर रोके रहो । मैं बहुत जल्द तुम्हारे पास लौटता हूँ भगवान की यही इच्छा हुई कि तुम्हारे लिये कुछ भोजन न ला सका तब तुम्हें मरने दूँगा—तुम मेरे आने के पहिले ही मर जाओगे तो मेरा परिश्रम अकारथ करने वाले समझे जाओगे—बहुत अच्छा ! अब तुम्हारा जी अच्छा मालूम होता है—मैं बहुत ही जल्द आऊँगा—पर तुमको इस जगह ठंढी हवा लगैगी—आओ मैं तुमको आड़ की जगह में ले चलूँ—भगवान ने इस बन में कुछ भी दिया तो तुम भूखे न मरने पाओगे—अनन्त ! धीरज न छोड़ना । (बाहर जाता है)

———

सातवाँ स्थान ।

बन का दूसरा भाग (वही स्थान ५ वाला)

(भोजन सजा हुआ—बड़े राजा, अमीचन्द और कई सरदार आते हैं)

बड़े राजा—जान पड़ता है वह कोई पशु बन गया क्योंकि मनुष्य के भेस में तो कहीं दिखाई नहीं देता ।

पहिला सरदार—महाराज ! अभी गया है—वह यहाँ एक गीत सुनकर प्रसन्न हुआ था ।

बड़े महाराज—वह बे ताल सुर की गड़बड़ अलापों का राग मान कर प्रसन्न होता है तो हम संसार के सारे शब्दों को सुरीला समझेंगे—जाओ उसे जल्दी ढूँढ़ो और उससे कहो कि हमें तुमसे कुछ कहना है ।

पहिला सरदार—वह देखिये ! आपही आ रहे हैं । हमारी मेहनत बची ।

(जय कृष्ण आता है)

बड़े राजा—क्यों जी ! क्या हाल है—क्या बात है कि तुम्हारे मित्र तुम्हें चारों ओर ढूँढ़ते फिरें—वाह वाह ! तुम तो प्रसन्न मालूम होते हो ।

जयकृष्ण—मेरी एक मूर्ख से भेंट हुई । एक मूर्ख से ! इस जङ्गल में एक ठठोल मूर्ख से ! कैसा विचित्र दुःखमय संसार है—जैसे भोजन से शरीर की तृप्ति होती है वैसेही उस मूर्ख से मिलने में मुझे प्रसन्नता हुई—वह धरती पर धूप में लेट गया और पड़े पड़े भाग्य को धिक्कारने लगा—फिर भी वह विचित्र मूर्ख था—मैंने कहा ! मूर्ख जी ! जै रामजी की । वह बोला, नहीं साहब ।

मैं मूर्ख नहीं हूँ जब तक मुझे भगवान भाग्यवान न बना दे, तुम मुझे मूर्ख कह के मत पुकारो। यह कह कर उसने जेब से घड़ी निकाली और बड़े चावसे देख कर, बड़ी बुद्धिमानी से कहने लगा कि, दस बज गये—इसी तरह संसार चक्र भी घूम रहा है—अभी एक घण्टा पहिले सुइ नौ पर थी—और फिर एकही घण्टे में यह ग्यारह पर हो जायगी—और इसी तरह हरहर घण्टे हम पकते जाते हैं और हरहर घण्टे गलते जाते हैं—इसी आधार पर सब कुछ है—और उस विचित्र मूर्ख को समय के बारे में ऐसी ऐसी बातें कहते सुनीं—तब मेरे मन में यह आया कि मूर्खों को ऐसी गूढ़ बातों पर विचार करना चाहिये? और उसकी घड़ी के हिसाब से मैं एक घण्टे तक हँसता रहा—और मैंने कहा—अजी प्रसिद्ध मूर्ख—तुम बड़े योग्य और बड़े रङ्गीले हो।

बड़े महाराजा—वह है कौन?

जयकृष्ण—महाराज! एक बड़ा योग्य मूख है—और वह राज सभा में रह चुका है—और कहता है कि जो सुन्दरी युवतियाँ हों तो अवश्य यह जान जाँय—जो संसारिक दशा की विचित्र बातें समुद्र यात्रा के पीछे बचे हुये पुवों की नाईं उसके दिमाग़ में भरी हैं—और जिनको वह अवसर अवसर पर निकालता है। मैं तो चाहता हूँ कि मैं भी वैसा ही मूर्ख होता! मेरे मन में वैसे ही रङ्गीले होने की बड़ी अभिलाषा है।

बड़े राजा—तुम भी बन जाओ।

जयकृष्ण—मेरी यह बिनती है कि आप अपने बुरे बिचारों को अपने सुबिचारों से नष्ट कर दीजिये—और मुझे बुद्धिमान समझिये—इसके सिवाय मुझे स्वतन्त्रता भी दीजिये जिससे हवा की भाँति अनुकूल हो कर जिसके बिषय में जो चाहूँ कह सकूँ—क्योंकि बिदूषकों को ऐसीही स्वतन्त्रता रहती है—और जिनको मेरी बातों से दुःख पहुँचे उन्हें सब से अधिक हँसना चाहिये—और जो यह पूछें कि क्यों ? तो इस "क्यों" का उत्तर ऐसा साफ़ है जैसे गाँव के मन्दिर की राह—जिस आदमी को किसी विदूषक ने हँसी का पात्र ठहराया हो—उसके हृदय में पीड़ा होने पर भी वह ऐसा न दिखा सकें कि मानो उसके विषय में कुछ कहाही नहीं गया तो उससे बढ़के मूर्ख कोई हैही नहीं—ऐसा जो नहीं दिखा सकता वह बहुत सहज ही गदहा बन जाता है । मुझको बिदूषकों के कपड़े दीजिये—और स्वच्छन्दता से बोलने की आज्ञा दीजिये—आप मेरी यह औषधि ग्रहण करें तो मैं संसारिक मोहरूपी रोग से आप के शरीर को बिलकुल आरोग्य कर दूँगा ।

बड़े राजा—भला तुम क्या कर सकोगे ?

जयकृष्ण—अच्छे के सिवाय और क्या करूँगा !

बड़े महाराज—पाप मिटाने के बदले उलटा और पाप कराओगे क्योंकि तुम आप विषय सुख के लोलुप दुराचारी रह चुके हो और जो जो चोटें विषय भोग में तुमने खाई हैं उन्हीं को संसार में फैलाओगे ।

जयकृष्ण—क्यों—जो किसी बड़े आदमी को कलङ्कित कर सकता है—किसी अभिमानी का घमण्ड तोड़ सकता है—क्या वह अभिमान समुद्र जल के भाँति अथाह नहीं रहता जब तक कि उसके कारण का नाश होकर आपही न घटने लगे—जब मैं यह कहूँ कि वह नगरवाली स्त्री दुराचारिणी है राज कुमारों से बुरा व्यवहार रखती है और मैं किसी विशेष स्त्री का नाम नहीं लेता, तब कौन कह सकता है कि मैं उसी को कहता हूँ—जब कि उसकी पड़ोसिन भी वैसी ही है—और कौन सा निकम्मा आदमी आकर यह कहेगा कि तुम मुझी को कलङ्क लगा रहे हो—पर जो ऐसा कहै तभी हमको उसपर आक्षेप करने का अवसर मिलता है—तब आपही विचार करैं कि मेरी बातों से उसकी क्या हानि हुई—और जो मेरी बातों से उसको लाभ पहुँचा तो उसने आपही अपनी अपनी हानि की और जो वह सच मुच निष्कलङ्क है तो मेरा आक्षेप भी बन के पखेरू की तरह किसी से सम्बन्ध न रख के आपही उड़ जाता है—यह कौन आ रहा है ?

(नङ्गी तलवार लिये आर्यनन्दन आता है ।)

आर्यनन्दन—ठहरो ! खाना मत ।

जयकृष्ण—क्यों ? मैंने अभी तक कुछ नहीं खाया ।

आर्यनन्दन—और न अब खाने पाओगे—जब तक भूखे को न खिला लो ।

जयकृष्ण—यह रसगुल्ला बड़ा मीठा है ।

बड़े राजा—अबे तू ऐसा भुक्खड़ हो गया—तू ऐसा जङ्गली बन गया कि भलमन्सी तुझमें कहने को भी रह गई ।

आर्यनन्दन—आपने पहिले ठीक कहा—बिपत्ति के कारण मैंने तो इस समय शील और सभ्यता को अलग रख दिया है—पर मैं समाज के सभ्य व्यवहार अच्छी तरह जानता हूँ—फिर भी मैं कहता हूँ कि ठहरो—इस भोजन को मुझे और मेरे साथी को खिलाने के पहिले जो छुएगा वह मारा जायगा ।

जयकृष्ण—तुम सीधे न मानोगे तो मैं भी मरने को तैयार हूँ ।

बड़े राजा—तुम क्या चाहते हो ? तुम जिसके लिये बरजोरी करते हो वह शील से सिद्ध हो सकता है और तुम्हारा मनोरथ पूरा कर दिया जायगा ।

आर्यनन्दन—मैं भूख से मर रहा हूँ । मुझे भोजन करने दो ।

बड़े राजा—बैठो और भोजन करो—हम तुमको आदर से खाने को बुलाते हैं ।

आर्यनन्दन—आप बड़ी मधुर बानी बोलते हैं । मैं बिनती करता हूँ कि आप मुझे क्षमा करें—मैं समझा था कि यहाँ सब असभ्य है—और इसी कारण मैंने बीर रूप धारण किया था—परन्तु आप न जाने कौन हैं—जो इस बीहड़ बन में वृक्षों के नीचे कष्ट से समय बिता रहे हैं—जो आपने अच्छे दिन देखे हैं—और घण्टा घड़ियाल का शब्द सुन कर मन्दिर में गये हैं—और किसी प्रतिष्ठित मनुष्य से निमन्त्रित होकर उसके यहाँ भोज्य में पधारे हैं—और करुणा करना और दूसरों का करुणा पात्र बनना जानते हैं तो मैं शील को अपना पूरा बल बनाता हूँ—और अपनी इच्छा पूरी होने की आशा से लज्जित हो कर अपनी तलवार को मियान में रखता हूँ ।

बड़े राजा—यह सच है कि हमने कभी अच्छे दिन भी देखे हैं और हम घण्टा घड़ियाल का शब्द सुन कर मन्दिर में भी गये हैं—और प्रतिष्ठित सज्जनों के यहाँ भोज्य में भी निमंत्रित हुये हैं—और हमने दूसरों की विपत्ति में करुणा से आँसू भी बहाये हैं—और इसीलिये तुम भलमनसाहत से बैठो और तुमको जिस बात की आवश्यकता हो और जो हम पूरी कर सकैं वह हमसे कहो और लो।

आर्यनन्दन—तब तो आप थोड़ी देर तक ठहरैं और मैं हरनी की तरह झपट कर यहाँ से जाऊँ और अपने बच्चे को लाकर भोजन कराऊँ—वह एक ग़रीब बूढ़ा आदमी है जो सच्चे प्रेम के कारण थका माँदा घसिटता मेरे साथ आया है—वह भूख और बुढ़ापे से व्याकुल है जब तक कि उसकी भूख न बुझै मैं नहीं खा सकता।

बड़े राजा—जाओ उसको जल्द लाओ—और जब तक तुम लौट कर न आओगे सब इसी तरह रक्खा रहैगा।

आर्यनन्दन—मैं आपके इस सत्कार का धन्यवाद देता हूँ—परमात्मा आपका कल्याण करै। (बाहर जाता है)

बड़े राजा—देखते हो, हमहीं दुखी नहीं हैं। इस महाविस्तृत संसार रूपी नाटकघर में हमारी ही तरह बहुत से दुःख के दृश्य दिखाई दिया करते हैं।

जयकृष्ण—यह सारा जगत एक रङ्गभूमि है—और इस जगत के सब ही स्त्री और पुरुष नाटक के पात्र हैं—और उनमें हर एक के प्रवेश करने और निकलने का एक समय है—और सब अपने अपने समय में तरह

तरह के तमाशे दिखाते हैं जिसका नाटक ७ अङ्कों में पूरा होता है—सब से पहला तो बचपन है जिसमें वह रोता हुआ लार लपेटे अपनी माँ की गोद में रहता है—दूसरा दुःखदायी पाठशाला का छात्र है—कि जो सवेरे मुँह धोकर बस्ता बग़ल में दबा कर बेमन घोंघे के तरह धीरे धीरे पाठशाला में जाता है—इसके पीछे कामार्त युवा आता है कि जो अग्नि के समान भस्म करनेवाली हाय मारता है और अपनी प्राणप्यारी के बाँके नयनों की प्रशंसा में पद बना कर गाता है—इसके पीछे योद्धा का वेष है। वह विचित्र शपथ खाता है और शेर की तरह दाढ़ी बढ़ाता है—और अपनी प्रतिष्ठा भङ्ग की शङ्का करता है और झटपट लड़ बैठता है और असार प्रतिष्ठा पाने के लिये तोप के मोहड़े पर खड़ा हो जाता है—इसके पीछे न्यायकर्ता का स्वरूप है जो अच्छे कपड़े और पगड़ी धारण करता है और जिसके नेत्र बड़े प्रचण्ड होते हैं और डाढ़ी एक मुख्य आकार के काट छाँट की होती है और तरह तरह के नीतिउपदेश और दृष्टान्त की बातें कहता हुआ अपनी कला दिखाता है। छठी बार यही आदमी दुबला पतला ढीली ढाली धोती और चपटे जूते पहिने एक हँसने योग्य स्वाँग के रूप में दिखाई देता है—नाक पर चश्मा चढ़ा हुआ है—बग़ल में बटुआ लटक रहा है—पतली टाँगों में जवानी की जुर्राबें ढीली लगती हैं—और वह बीरता के साथ अकड़ की बोली अब फिर एक बालक के समान तुतुलाने लगी है—अन्तिम दृश्य कि जो इस विचित्र नाटक के भाँति

भाँति की घटनाओं की कथा को समाप्त करता है दूसरी बाल्यअवस्था है जिसमें सब कुछ भूल जाता है, न दाँत रहते हैं न आँख—और न जीभ से स्वादही मालूम पड़ता है—किसी पदार्थ का ज्ञान नहीं रहता।

(अनन्त के साथ आर्यनन्दन फिरआता है)

बड़े राजा—आइये ! अपने कन्धे से आदरणीय बोझे को उतारिये और इसको भोजन कराइये।

आर्यनन्दन—इसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।

अनन्त—जो आप चाहें तो मुझमें आपको धन्यवाद देने की सामर्थ्य नहीं है।

बड़े राजा—आओ भोजन करो। अभी मैं तुम्हारा हाल पूँछ कर तुम्हें कष्ट देना नहीं चाहता।
अच्छा भाई अब हमको कुछ गाना सुनाओ।

अमीचन्द— गीत—चौपाई।

गाओ गाओ मनोहर गीतैं ।
शीतल मन्द सुगन्ध बयारी ।
बहौ सदा मम हिय सुखकारी ॥
कपटी कुटिल सद्दृश जगमाहीं ।
तुम काहुहि दुखदायक नाहीं ॥ गाओ० ॥
जीवन्ह कहँ तुम जीवन त्राता ।
आनन्द मङ्गल मोद प्रदाता ॥
अलख रूप अति कोमलताई ।
अङ्गस्पर्श परम सुखदाई ॥ गाओ० ॥
बुद्धि रहित कामी जन जोई ।
तुमहि पाइ बिचलित चित होई ॥

सबहिं सुखद तुम अति उपकारी ।
धन्य धन्य ब्रह्माण्ड बिहारी ॥ गाओ० ॥
मित्रन्ह छलहिं कृतघ्न कहाहीं ।
तिन्ह सम तुम दुखदायक नाहीं ॥
दलि दुख दोष सकल सुखकारी ।
त्रिविधि बयारि ताप त्रय हारी ॥ गाओ० ॥

अहो पवन परमानन्दकारी ।
परम प्रशंसनीय गति धारी ॥
तुमहिं सराहत हृदय जुड़ाहीं ।
तुम्ह सम सुखद कतहुँ कोउ नाहीं ॥ गाओ० ॥

परम पवित्र चरित्र तुम्हारे ।
सुमिर प्रफुल्लित हृदय हमारे ॥
नृत्य गान अरु तान तरङ्गा ।
ब्रह्मविलास सकल दुःख भङ्गा ॥ गाओ० ॥

बड़े राजा—जो तुम सचमुच रविनन्दन जी के बेटे हो जैसा तुमने अभी धीरे से कहा था और तुम्हारी सूरत भी उनसे मिलती जुलती है, तो तुम्हारे यहाँ आने से हमको बड़ा आनन्द हुआ—हम वही राजा हैं जो तुम्हारे पिता पर बहुत प्रेम रखते थे—तुम अपना सब ब्यौरा हमारी गुफा में चल कर कहना—बूढ़े अनन्त तुम्हारे स्वामी के तरह तुम्हारे भी यहाँ आने से हमको आनन्द है। इसका हाथ पकड़ लो—हाथ मिलाओ। और अपना सब हाल हमसे कहो।
(सब बाहर जाते हैं)

तीसरा अङ्क ।

(पहिला स्थान—राजभवन का कमरा)

(राजा पुण्डरीक, अलिवर, सरदार और सेवक आते हैं)

राजा पुण्डरीक—वाह जी ! उसे तब से देखाही नहीं ? यह असम्भव है—हमारे मन में दया न होती तो, बदला लेने के लिये, तुम्हारे होते हुये, आर्यनन्दन के ढूँढ़ने की आवश्यकता न थी—तौ भी, याद रक्खो ! कि जहाँ कहीं तुम्हारा भाई हो ढूँढ़ लाओ—जैसे बनै तैसे लाओ—जीता हो या मरा जैसा हो वैसा लाओ—नहीं तो जीने की आशा रख कर हमारे राज के भीतर लौट कर मत आना—जब तक तुम उसको ढूँढ़ कर न लाओगे तब तक तुम्हारो भूमि धन सब सम्पति जो तुम्हारी कहलाती है हम हरण करते हैं—और जब तक तुम अपने भाई को हाज़िर न करोगे कुछ न छोड़ेंगे ।

अलिवर—हाँ ! हम तो चाहते हैं कि इस विषय में आप हमारे मन का भाव जानते ! हमने जन्म भर अपने भाई से प्रीति नहीं की ।

राजा पुण्डरीक—तब तो तू और दुष्ट है—अच्छा इसको बाहर निकालो—कार्यकारी को भेजो इसकी सब जायदाद ज़ब्त करैं—और बहुत जल्द अपने भाई को ढूँढ़ लाने के लिये इसे बाहर भेजो—(सब बाहर जाते हैं)

दूसरा स्थान—आरण्यक वन ।

(आर्यनन्दन एक पत्र लिये आता है)

आर्यनन्दन—मेरी कविता मेरे प्रेम की साक्षी होकर यहाँ रहै। हे सर्वोपरि विराजमान, प्रकाशवान, सूर्य भगवान—तुम अपने निर्मल नेत्रों से अपनी भक्तिमती राजकुमारी की ओर अनुग्रह से देखो—हे प्यारी रसलीना यह पेड़ मेरे लिये पुस्तक होंगे। इनकी छालों पर मैं अपने मन के भाव लिखूँगा—इस वन में जो इसे देखैगा वह तुम्हारे रूपशील और उत्तम गुणों को जानैगा—हे आर्यनन्दन! दौड़ दौड़! और एक पेड़ पर इस परम सुन्दरी सती प्राणप्यारी का चित्र खींच दे। (बाहर जाता है)

(करन और मूसरचन्द आते हैं)

करन—तुम इस हरवाही चरवाही रहन सहन को कैसा मानते हो।

मूसरचन्द—अपनी दशा के विचार से मैं तो यह रहन सहन बहुत अच्छा मानता हूँ—पर हरवाही चरवाही करना अच्छा काम नहीं—यह एकान्तवास है, इससे मैं इसे बहुत अच्छा मानता हूँ, पर गुप्त है इससे मैं इसे निकम्मा समझता हूँ। खेतों से इसका सम्बन्ध है, यह बात तो बड़े आनन्द की है—पर राजसभा से इसको कुछ सम्बन्ध नहीं यह महा दुःखदायक है—एक साधारण चाल है यह तो मेरे चित के बिलकुल अनुकूल है पर इसमें परिपूर्णता नहीं है इसलिये इससे मेरी तृप्ति नहीं हो सकती! अजी गड़रिये तुममें भी कुछ ज्ञान है।

करन—बहुत तो नहीं परन्तु इतना जानता हूँ कि मनुष्य को जितनाही तृष्णा रोग होता है उतनाही कष्ट भोग भी उसको नहीं होता—जिसके धन उपाय और सन्तोष नहीं है उसको तीन हित नहीं हैं—पानी का स्वभाव ठंढा करना है—आग का स्वभाव जलाना है—हरी हरी अच्छी घास से भेड़ मोटी ताज़ी होती हैं—रात तभी होती है जब सूर्य नहीं रहता—और यह जानता हूँ कि जिसने स्वभाव से मेहनत से या विद्या के अभ्यास से कुछ उन्नति नहीं की उसको या तो अच्छी शिक्षा नहीं मिली और या उसने अच्छे कुल में जन्म नहीं लिया।

मूसरचन्द—यह तो बड़ा ज्ञानी मालूम होता है—चरवाहे जी! क्या तुम कभी राजसभा में भी रहे हो।

करन—नहीं तो मैं सच कहता हूँ! कभी नहीं।

मूसरचन्द—तब तो तुम बड़े निकम्मे हो।

करन—नहीं तो, मैं निकम्मा नहीं हूँ।

मूसरचन्द—जरूर निकम्मे हो—उस कच्ची रोटी की तरह जो एकही ओर सेंकी गई हो।

करन—क्या! राजसभा में न रहने से? आप की दलील।

मूसरचन्द—क्यों! राजसभा में न रहने से तुमने कभी सभ्यता के आचरण देखे ही नहीं—और जब सभ्यता के आचरण नहीं देखे तो तुम्हारे आचरण दुष्ट होंगे—और दुष्टता एक पाप है—और पाप को बुरा कहते हैं चरवाहे जी। तुम्हारी दशा भयावनी है।

करन—अजी ! नहीं तो । जो आचरण राजसभा में अच्छे माने जाते हैं, गँवईं गाँव में उनको इतनी हँसी होती है जितनी गँवईं गाँव के चलावे की राजसभा में—आप कहते हैं कि तुम लोग राजसभा में प्रणाम करना नहीं जानते, आपस में राम जोहार करते हो । मैं कहता हूँ कि जो राजदरबारवाले चरवाहे बन जाँय तो क्या वैसा प्रणाम अनुचित न होगा ।

मूसरचन्द—इसका कुछ दृष्टान्त दो, छोटाही सा ।

करन—क्यों ? हम सदा अपनी भेड़ें चराते हैं, तुम जानते हो कि उनका चमड़ा चर्बीला और चिकना होता है ।

मूसरचन्द—क्या राजसभा वालों के हाथों में पसीना नहीं आता भेड़ों की चर्बी का स्वाद ऐसा बढ़िया नहीं होता जैसा मनुष्य के पसीने का—यह दृष्टान्त ठीक नहीं है कोई अच्छा दृष्टान्त दो ।

करन—इसके सिवाय हमारे हाथ कड़े होते हैं ।

मूसरचन्द—इसको तो तुम्हारे ओंठही भले पहिचानते होंगे—यह दृष्टान्त भी ठीक नहीं है—इससे भी अच्छा दृष्टान्त बोलो ।

करन—और वह भेड़ों को मारने से दूषित रहते हैं—क्या तुम हमको ऐसे कलङ्कित वस्तु का चुम्बन कराना चाहते हो ! राजसभा के आदमियों के हाथ तो सुगन्धित रहते हैं ।

मूसरचन्द—अरे भाई ! यह तो बिलकुल ही उज्जड्डपने की बात है—तुम उत्तम जीव नहीं एक कीट के समान हो—बुद्धिमानों से उपदेश सीखो—उस पर मन में बिचार करो—इतर मट्टी के तेल पर भी उतारे जाते हैं और

वह बड़ी ही ख़राब चीज़ है—निपट अशुद्ध है—अपना दृष्टान्त बिचार के बोलो ।

करन—मुझसे तुम्हारी बुद्धि बहुत तेज़ है—अब मैं कुछ न कहूँगा ।

मूसरचन्द—क्या तुम मूर्ख बन कर चुप साध जाओगे—अजी मन्द बुद्धि ! परमेश्वर ही तुम्हारी अक़्ल की फ़स्द खोलैं—तुम मूर्ख हो ।

करन—अजी मैं एक मज़दूर हूँ—जो कुछ खाता हूँ कमाता हूँ, जो पहनता हूँ पैदा करता हूँ—न मैं किसी की निन्दा के योग्य हूँ न किसी के सुख से द्वेष रखता हूँ—मैं दूसरों के अच्छे भाग्य से प्रसन्न और अपने छोटे भाग्य से सन्तुष्ट हूँ—और सब से बड़ा अभिमान मुझे इस बात का है कि मैं अपनी भेड़ों को चरते और उनके बच्चों को दूध पीते देखता हूँ ।

मूसर चन्द—यह तुम्हारा दूसरा साधारण पाप है—मैं नहीं जानता कि तुम अपना कैसे निर्वाह करोगे ।

करन—यह देखो । मेरी नयी मालकिन के भाई महाबीर आ रहे हैं ।

(एक पत्र पढ़ती हुई रसलीना आती है)

रसलीना—पढ़ती है ।

पूरब पच्छिम डारें छान ।
नहीं तरुनि रसलीन समान ॥
वाके गुन ब्यापे संसार ।
फिरैं बायु पर मनहुँ सवार ॥
छबि सारी देखे रसलीना ।
कैसिहु सुन्दरि लगै मलीना ॥

जग के सुन्दर रूप बिसारो ।
रसलीना मुखचन्द निहारो ॥

मूसरचन्द—ऐसी कविता खाने सोने का समय छोड़ कर मैं आपको बरसों सुना सकता हूँ । घी बेचनेवाली बाज़ार में ऐसे गीत गाती चलती हैं ।

रसलीना—दूर हो ।

मूसरचन्द—बानगी लीजिये ।

हरना होय जो हरनी हीना ।
तो वह ढूँढ़ लेइ रसलीना ॥
बिल्ली ढूँढ़ै अपना जोड़ा ।
घोड़ी ढूँढ़ै अपना घोड़ा ॥
रसलीना ढूँढ़ै रसलीन ।
सब सब के रहते आधीन ॥
काटै खेत सो गट्ठु लगावै ।
रसलीना सङ्ग सो घर लावै ॥
कड़ुआ छिलका मीठी गिरी ।
रसलीना है मीठी निरी ॥
अच्छा फूल जु पाना चहो ।
रसलीना लो काँटे सहो ॥

यह बड़ी भद्दी कविता है आप इसे क्यों लिये फिरती हैं ।

रसलीना—चुप रह मैंने इसे एक पेड़ पर लटका पाया है ।

मूसरचन्द—तो उसमें बुरे फल लगे ।

रसलीना—मैं इसका पैवन्द तुमसे लगा दूँ तो देशभर में सब से पहिले इसीसे फल लगेंगे । जब वह पकेंगे तुम सड़ गल जाओगे ।

मूसरचन्द—आप कह चुकीं, ठीक बे ठीक का हाल बन जानैं ।

(सुशीला एक पत्र लिये आती हैं)

रसलीना—चुप रहो हट जाओ बहिन कुछ पढ़ रही है ।

सुशीला—इस बन में ना कोई रहै ।
इसे न सूना कोई कहै ॥
जीभ बनैगा इक इक पात ।
बोलैंगे सब मीठी बात ॥
सुनो ध्यान से मेरी कहानी ।
थोड़ी ही सब की जिन्दगानी ॥
जग के रहने वाले सारे ।
भटके फिरते मारे मारे ॥
कोई कुछ करने ना पाते ।
चट पट काल के गाल समाते ॥
कोई प्रीति कर क़समैं खाते ।
फिर धोखा दे आँख चुराते ॥
पहिले आँख लड़ा मन हरते ।
पीछे घाव हिये में करते ॥
बन में जहाँ जहाँ हरियाली ।
तिनकी सुन्दर डाली डाली ॥
प्राणप्रिया का नाम लिखूँगा ।
प्यारी के गुण ग्राम लिखूँगा ॥
जो जो अक्षर पढ़ना जानैं ।
सब प्यारी के गुण पहिचानैं ॥
लोक लोक की सुन्दरताई ।
एक ठाँव करि प्रिया बनाई ॥

अच्छे अच्छे गुन हैं जेते ।
देख पड़े एकी में तेते ॥
रही हेलेन जो सुन्दर नारी ।
लेली है उसकी छबि सारी ॥
उसका पापी हियरा छोड़ा ।
उसके औगुन से मुह मोड़ा ॥
क्लिउपत्रा का ले अनुभाव ।
लुक्रीसी का सरल स्वभाव ॥
अटलन्टा का कोमल अङ्ग ।
इसमें आय मिले इक सङ्ग ॥
सदा प्रिया में गुन सकल राखैं श्रीभगवान ।
रहौं प्रिया को दास मैं जब लग तन में प्रान ॥

रसलीना—वाहजी उपदेशक, तुमने प्रेम का बड़ा लम्बा व्याख्यान देकर सुननेवालों का जी उकता दिया पर तुम्हारे मुँह से न निकला कि आप लोग घबराँय न, धीरे रहैं ।

सुशीला—तुम लोग हट जाओ । चरवाहे तुम भी हटो । तू भी इसी के साथ दूर हो ।

मूसरचन्द—चलो भाई अपनी भलमंसी सँभाल कर भागैं। माल असबाब लेकर नहीं तो थैली ही सही । (करन और मूसरचन्द बाहर जाते हैं)

सुशीला—तुमने यह कविता सुनी ?

रसलीना—हाँ ! मैंने सब सुनी । और कुछ अधिक भी, कई पदों में जितने अक्षर होने चाहियें उनसे अधिक थे ।

सुशीला—इससे कुछ हानि नहीं—क्योंकि पद उनका भार सह सकते हैं ।

रसलीना—ठीक है । परन्तु कई पदों में अक्षर कम थे इस कारण अर्थ भी साफ़ नहीं निकलता था—इससे उनमें कई दोष दिखलाई दिये ।

सुशीला—तुमको इस बात पर कुछ अचम्भा नहीं हुआ कि तुम्हारा नाम इन पेड़ों पर कैसे खुद गया ।

रसलीना—तुम्हारे आने से पहिले ही मैं रुपये में १८ आने अचम्भे में डूबी थी । आज तक किसी ने मेरे विषय में ऐसी कविता नहीं बनाई । मैं तो आर्यावर्त की एक साधारण स्त्री हूँ ।

सुशीला—कुछ मालूम होता है कि यह किसका काम है ।

रसलीना—क्या यह कोई पुरुष है ।

सुशीला—वही जिसके गले में तुमने कभी एक हार पहिनाया था—तुम्हारा रङ्ग क्यों बदल रहा है ।

रसलीना—सच बता ! किसने लिखी है ।

सुशीला—हे भगवान ! हे परमात्मा ! मित्रों का मिलना तो बहुत कठिन है ; पर परमेश्वर की माया—भूँडोल से पहाड़ सरक जाते हैं और मिलना सहज हो जाता है ।

रसलीना—परन्तु सच कह ! यह है कौन ?

सुशीला—क्या वह नहीं हो सकता ?

रसलीना—मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ ठीक ठीक बताओ ! कौन है ?

सुशीला—अरे ! कैसा अचरज ! बड़ा अचरज ! और महा अचरज ! अचरज और फिर अचरज ! और सब के पीछे कुछ कहने की बात नहीं ।

रसलीना—मेरी दशा पर दया करो, तुम जानती हो कि मैंने पुरुष का रूप बनाया है तो क्या मेरा स्वभाव भी

मर्द का सा हो गया है । एक पल की बेर मुझे एक कल्प के बराबर दुःखदायी है । बता कि यह कौन है झट पट बता और जल्द बोल । तू तोतली ही होती तो मुझे सन्तोष होता—छोटे मुँह की बोतल से जैसे मदिरा निकलती है या तो एक बारही बहुत या कुछ नहीं । तेरे मुँह से उस गुप्त मनुष्य का नाम टपक पड़ता—अपने मुख की टट्टी दूर कर कि तेरे मुखसे निकला हुआ शब्द अमृत पिऊँ—वह कैसा आदमी है ?

सुशीला—वह ऐसा पुरुष है जिसे तुम अपने हृदय में धारण कर लो ।

रसलीना—हे भगवान ! यह तुम्हारी क्या माया है ? वह किस तरह का आदमी है ? क्या उसका सिर पगड़ी से और मुँह दाढ़ी से शोभा पाने योग्य है ।

सुशीला—नहीं ! उसके डाढ़ी है पर बहुत कम ।

रसलीना—वह परमात्मा का धन्यवाद दे और कृतज्ञ हो तो परमेश्वर बड़ा कर देंगे—और जो तुम उसका नाम बताने में देर करोगी तो मैं उसकी डाढ़ी का बढ़ना रोक दूँगी ।

सुशीला—यह वही वीर आर्यनन्दन है जिसने उस पहलवान का गर्व और तुम्हारा मन दोनों एक साथही हरे थे ।

रसलीना—नहीं नहीं ! हँसी मत कर ! सती कुमारी की तरह सच कह ।

सुशीला—बहिन सचमुच यह वही हैं ।

रसलीना—आर्यनन्दन ।

सुशीला—हाँ हाँ ! आर्यनन्दन ।

रसलीना—मैं मरदाने भेस को क्या करूँगी ? तुमने जब उन्हें देखा था तो क्या कहते थे—क्या कहा ? वह कैसे दिखाइ पड़ते थे ? कहाँ चले गये ? यहाँ कैसे क्या करने आये थे ? क्या उन्होंने मुझे पूँछा था ? कहाँ रहते हैं ? तुमसे कैसे बिदा हुये—और फिर कब मिलैंगे ? बोल, उत्तर दे ।

सुशीला—तू मेरे लिये पहिले सुरसा का मुँह माँग ला दे तो सब का उत्तर एक साथ दूँ क्योंकि इसके मुँह से इतना बड़ा शब्द कैसे निकल सकता है—प्रश्नोत्तर की रीति से इस विषय में हाँ या नहीं कह देना बड़ा कठिन है ।

रसलीना—क्या वह जानते हैं कि मैं इस बन में पुरुष भेस में रहती हूँ—वैसेही सुन्दर जान पड़ते थे जैसे कुश्ती के समय थे ।

सुशीला—मदन से उन्मत्त चित्तवालों को बातें समझना वैसही असम्भव हैं जैसे परमाणुओं का गिनना पर मैंने उन्हें जैसा देखा है वैसा बताती हूँ । सुन । और फिर इसको जैसा जी चाहे समझ ! मैंने उन्हें एक पेड़ के नीचे गिरे हुये फल की तरह पड़ा देखा था ।

रसलीना—जब उससे ऐसा फल टपकता है तो हम उसको कल्पवृत्त क्यों न कहैं ।

सुशीला—सखी ! मेरी बात सुन ।

रसलीना—अच्छा कह ।

सुशीला—वहाँ पर वह एक घायल वीर की तरह पड़े थे ।

रसलीना—ऐसी दशा में देखने से दया आती है । परन्तु इससे कुछ भूमि की शोभा बढ़ गई होगी ।

सुशीला—चुप ! ऐसा अमङ्गल मत बोल—अपना मुँह बन्द कर। शिकारी के भेस में थे।

रसलीना—अरे भगवान ! वह हमारे हृदय को घायल करने के लिये आये हैं।

सुशीला—अब मैं अपना गीत बिना ठेके के ही समाप्त करती हूँ—तू मेरा राग बिगाड़े देती है।

रसलीना—क्या तू नहीं जानती कि मैं स्त्री हूँ—जब मेरे मन में कोई बात आवैगी बे बोले न रहूँगी। प्यारी—कहे जा।

सुशीला—तू मुझे भुला देती है—चुप—देख वह क्या आ रहे हैं।

रसलीना—यह वही हैं ? छिप कर देखें।

(रसलीना और सुशीला छिप जाती हैं)

(आर्यनन्दन और जयकृष्ण आते हैं)

जयकृष्ण—मैं तुम्हारे साथ आने का बड़ा उपकार मानता हूँ पर सच पूछो तो अकेला होता तो बहुत प्रसन्न रहता।

आर्यनन्दन—और मैं भी यही चाहता था—परन्तु समाज रीति के अनुसार आपके साथ रहने का धन्यवाद देता हूँ।

जयकृष्ण—अच्छा जाइये ! हम लोगों को उचित है कि समय समय पर मिलते रहैं।

आर्यनन्दन—हम चाहते हैं कि हम लोग आपस में अनजान की तरह रहैं तो और भी अच्छा हो।

जयकृष्ण—मेरी तुम से यह प्रार्थना है कि छालों पर प्रेमरस की कविता लिख लिख कर पेड़ों को न बिगाड़ो।

आर्यनन्दन—मैं भी तुम से यह प्रार्थना करता हूँ कि मेरी कविता का अनुचित अर्थ करके उनको न बिगाड़ो।

जयकृष्ण—तुम्हारी प्रिया का नाम रसलीना है ?

आर्यनन्दन—जी, हाँ।

जयकृष्ण—उसका नाम मुझे अच्छा नहीं लगता।

आर्यनन्दन—जब उसका नाम रक्खा गया था तब आपको प्रसन्न करने का कुछ विचार नहीं किया गया था।

जयकृष्ण—वह कितनी बड़ी है।

आर्यनन्दन—ठीक मेरे आन्तरिक प्रेम के बराबर।

जयकृष्ण—तुम बड़े अच्छे उत्तर देते हो—तुमसे सोनारिनियों से जान पहचान नहीं है—उनकी अँगूठियों पर रसीले बचन खुदे हुये नहीं देखे ?

आर्यनन्दन—जी नहीं, पर मैं तुम्हें रङ्ग बिरङ्गे उत्तर देता हूँ जिससे तुम्हारे सब प्रश्न पूरे हो जायँ।

जयकृष्ण—तुम्हारी बुद्धि बड़ी पैनी है—जान पड़ता है कि तुम्हारे कण्ठ में सरस्वती बास करती है—आओ, हम लोग बैठ कर मोहमय जगत और अपने अपने अभाग्य की निन्दा करें।

आर्यनन्दन—अपने दोष मैं सब से अधिक जानता हूँ इससे संसार में और किसी को बुरा नहीं कह सकता।

जयकृष्ण—तुम्हारा तो सबसे बड़ा दोष काम के फन्द में फँसना है।

आर्यनन्दन—यह दोष तो ऐसा है कि इसको मैं आपके उत्तम से उत्तम गुन से कभी बदलना नहीं चाहता; मैं आप की बातों से थक गया।

जयकृष्ण—सच पूँछो तो मैं एक मूर्ख की राह देख रहा था, इतने में तुमसे भेंट हो गई।

आर्यनन्दन--वह मूर्ख इस नाले में डुब्बी मारे है, देखो तो दिखाई देगा।

जयकृष्ण—उसमें तो मेराही प्रतिबिम्ब दिखाई देगा।

आर्यनन्दन—और वह मेरी समझ में या तो मूर्ख है या कुछ भी नहीं।

जयकृष्ण—अब मैं तुम्हारे पास नहीं ठहर सकता—धन्य कामदेव ! परमेश्वर तुम्हारा कल्याण करे।

आर्यनन्दन—तुम्हारे जाने से मैं प्रसन्न हूँ—हे चिन्ता में डूबे महाशय, तुम्हारा भी कल्याण हो (जयकृष्ण बाहर जाता है)

(रसलीना और सुशीला आती हैं)

रसलीना—(सुशीला से) मैं उससे एक चञ्चल सेवक की तरह बातें करूँगी और इस भेस में उसे हँसी में मूर्ख बनाऊँगी। (आर्यनन्दन से) ओ जङ्गली ! सुनते हो ?

आर्यनन्दन—सुनता हूँ, क्या है।

रसलीना—बताइये तो कै बजे हैं।

आर्यनन्दन—तुम्हें यह पूँछना चाहिये था कि कितना दिन चढ़ा है। इस बन में कोई घड़ी तो हैही नहीं।

रसलीना—तब तो इस बन में सच्चा प्रेमी कोई नहीं है, क्योंकि अपने प्रेमी के वियोग में हर एक मिनट की आह और हर घण्टे की कराह घड़ी के बराबर ही मिनट और घण्टे का काम देता है जिससे समय की धीमी चाल ठीक ठीक जानी जा सकती है।

आर्यनन्दन—और समय तो भागता है उसकी तेज़ चाल कहना उचित नहीं है ?

रसलीना—नहीं साहब, कभी नहीं—भिन्न भिन्न मनुष्यों के समय की भिन्न भिन्न गति होती है—मैं तुमको बता सकता हूँ कि किस का समय "क़दम चाल" चलता है और किस का दुलकी—और किस का "सरपट" दौड़ता है ।

आर्यनन्दन—अच्छा तो यह बताओ कि किसका समय दुलकी चलता है ।

रसलीना—कुमारी का वह समय जो बिवाह की बात चीत पक्की हो जाने और बिवाह के बीच का होता है—एक रात का अन्तर भी होता है तो सात बरस मालूम होता है ।

आर्यनन्दन—और किस का समय क़दम चलता है ।

रसलीना—कर्मकाण्ड बिना पढ़े पुरोहित का और रोग रहित धनी का—क्योंकि पहिले को तो मूर्ख होने के कारण सदा छुट्टी रहती है, इससे निश्चिन्त होकर सोता है—और दूसरा कोई दुःख न होने के कारण सुख से बिताता है—क्योंकि पहिला तो कर्मकाण्ड कराने के झगड़े से बचा है और दूसरा दारिद्रता के कष्ट से—इनका समय क़दम चाल चलता है ।

आर्यनन्दन—और किसका समय सरपट दौड़ता है ।

रसलीना—उस चोर का जो सूली पर चढ़ाया जाता है—क्योंकि वह बहुत धीरे चलता है पर मन में समझता है कि बहुत जल्द पहुँचाही चाहता है ।

आर्यनन्दन—और किस का समय स्थिर रहता है ।

रसलीना—तातील के दिनों में वकीलों का ! क्योंकि कचहरी बन्द होने के कारण कचहरी खुलने के समय तक वह

निश्चिन्त हो कर सोते हैं—और समय का बीतना उनको कुछ मालूम नहीं होता ।

आर्यनन्दन—सुन्दर जवान, तुम कहाँ रहते हो ।

रसलीना—जैसे साड़ी पर मगजी होती है उसी तरह इस बन के किनारे इसी गड़रिन बहिन के साथ रहता हूँ ।

आर्यनन्दन—यहीं के रहनेवाले हो ।

रसलीना—हाँ खरगोश के तरह, जहाँ पाला जाता है वहीं का रहनेवाला हो जाता है ।

आर्यनन्दन—तुम्हारी बानी जङ्गलियों की बोली से बड़ी मीठी है ।

रसलीना—बहुतों ने मुझसे ऐसा कहा पर सच यह है कि मेरे धर्मात्मा चचा शहर के रहनेवाले सभ्य थे, उन्हींने मुझे बात चीत करना सिखाया है—वह अपनी प्राण प्यारी को प्रसन्न करना बहुत अच्छी तरह जानते थे क्योंकि वह एक बेर काम के फन्द में फँस गये थे—फिर कामानुराग की निन्दा में उनके कई व्याख्यान मैंने सुने हैं—परमेश्वर का धन्यवाद है कि मैं स्त्री नहीं हूँ और उन दोषों से बचा हूँ जो उनके कहने के अनुसार सब स्त्रियों में पाये जाते हैं ।

आर्यनन्दन—क्या उनके कहे हुये कोई मुख्य मुख्य दोष आपको याद हैं जो संसार की सब स्त्रियों पर उन्होंने लगाये थे ।

रसलीना—उनमें कोई दोष मुख्य नहीं कहा जा सकता—चवन्नियों के तरह आपस में सब बराबर हैं—और हरएक दोष उतना ही बुरा जान पड़ता है जितना कि दूसरा ।

आर्यनन्दन—कृपा कर के उनमें से दो एक दोष तो कहो ।

रसलीना—नहीं, मैं अपनी दवा रोगियों को छुड़ा दूसरों को व्यर्थ नहीं देना चाहता—इस बन में एक आदमी आया है जो हमारे छोटे वृत्तों को, छाल पर रसलीना का नाम खोद खोद कर, बिगाड़ रहा है—लताओं पर रस के पद और काँटों पर शोक के गीत लटकाता है—सचमुच रसलीना का नाम अमर कर रहा है—उससे भेंट हो जाय तो अलबत्ता मैं उसको अच्छी सलाह दूँ—क्योंकि वह कामज्वर का रोगी जान पड़ता है।

आर्यनन्दन—वह रोगी मैंहीं हूँ—कृपा करके अपनी दवा मुझे बताओ।

रसलीना—मेरे चचा के बताये हुये कोई भी चिन्ह तुममें दिखाई नहीं देते। अत्यन्त कामासक्त लोगों की पहिचानै उन्होंने मुझे बतलाई हैं—मेरी समझ में तुम इस जाल में नहीं फँसे हो।

आर्यनन्दन—उन्होंने क्या चिन्ह बतलाये थे।

रसलीना—सूखे गाल—कि जो तुम्हारे नहीं हैं—नीली घुसी हुई आँखें जो तुम्हारे नहीं हैं—बात करने से घृणा जो तुम्हारे नहीं है—बिखरी हुई दाढ़ी जो तुम्हारे नहीं है—परन्तु इसके लिये मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ क्योंकि कुल में छोटे भाई की आमदनी के तरह तुम्हारे दाढ़ी भी बहुत कम ही है—इसके सिवाय तुम्हारी जुराबैं बिना बन्द की—तुम्हारी टोपी बिना मगजी की—तुम्हारा कोट बिना बटन का—तुम्हारा बूट बिना तसमें के होना चाहिये—और हर एक चीज़ ऐसीही होनी चाहिये जिससे यह सिद्ध हो कि उसकी कुछ

परवाह ही नहीं है—परन्तु तुम तो ऐसे आदमी नहीं मालूम पड़ते—तुम तो ऐसे आदमी हो कि इन सब बातों पर ध्यान देते हो—और किसी दूसरे के प्रेम के बदले अपने शरीर के प्रेमी हो ।

आर्यनन्दन—भाई, मैं चाहता हूँ कि तुम्हें मैं यह विश्वास दिला सकूँ कि मैं सचमुच एक सुन्दरी पर मोहित हूँ ।

रसलीना—मुझको विश्वास दिला सको तो जानो कि उसीको विश्वास दिलाया जिस पर मोहित हो—जिसका विश्वास मान लेना वह कभी मुख से न कहती । क्यों कि इस बिषय में स्त्रियों का स्वभाव ऐसा होता है कि जो कुछ उनके मन में होता है उसका उलटा कहती हैं—पर सच कहो कि क्या तुम वही हो जिसने वृक्षों पर वह कविता लटकाई है जिसमें रसलीना की इतनी बड़ाई की गई है ।

आर्यनन्दन—मैं तुमसे रसलीना के गोरे हाथों की सौगन्द खाकर कहता हूँ कि मैं वही हूँ—वह मन्दभागी मैंहीं हूँ ।

रसलीना—क्या तुम्हारा प्रेम इतना बढ़ा चढ़ा है जितना उन दोहों से प्रगट होता है ।

आर्यनन्दन—मेरा पूरा प्रेम न तो उन दोहों से प्रगट हो सकता है न किसी और युक्ति से ।

रसलीना—कामानुराग सचमुच एक प्रकार का पागलपन है—और उसको अन्धेरी कोठरी में बन्द करना और ताड़ना देना ऐसाही उचित है जैसा कि पागल को—कामियों को ऐसा दण्ड न मिलने का कारण यही है कि कुछ न कुछ ऐसा उन्माद सभी को रहता है,

और दण्ड देने वाले भी इससे बचे नहीं रहते—पर मैं तुम्हारे इस रोग के निवारन के लिये अच्छी सलाह दे सकता हूँ ।

आर्यनन्दन—क्या तुम ने कभी किसी कामोन्मत्त की दवाई की है ।

रसलीना—हाँ, रीति यह है, मुझेही अपनी प्राणप्यारी समझना पड़ा था—और उसको यह सलाह दी थी कि वह नित्य मेरी मनुहार किया करै और मैं चञ्चल बन कर शोक, दुर्बलता, चञ्चलता, उत्कण्ठा, प्रसन्नता, अभिमान, बानर प्रकृति, ओछापन, अनिस्थिरता, आँसू बहाना, आह और मन्द हँसी आदि प्रगट किया करता था—हर बात बात में कुछ न कुछ चोचला और जो सच पूँछो तो किसी बात में कुछ नहीं—जैसे बहुधा लड़कों और स्त्रियों का स्वभाव हुआ करता है । कभी उसकी चाह, कभी उससे घृणा, कभी उससे प्रसन्न हो जाना कभी उसको झूँठा ठहराना, कभी उसके लिये रोना, कभी उसपर निठुरता करना—यहाँ तक कि वह कामानुराग की उन्मत्तता को छोड़ कर सचमुचही उन्मत्त हो गया और उसका फल यह हुआ कि सांसारिक वासनाओं को तज कर वह सन्यासी के तरह एकान्त में रहने लगा—इस तरह मैंने उसको यिलकुल चङ्गा कर दिया और इस उपाय से एक चङ्गी भेड़ के मन के तरह तुम्हारा मन भी ऐसा निर्मल कर दूँगा कि कामानुराग का लेश मात्र भी तुममें न रह जायगा ।

आर्यनन्दन—मैं अच्छा नहीं हो सकता ।

रसलीना—जो तुम मुझे रसलीना कहने लगो और नित्य मेरी झोपड़ी में आया करो और मुझे मनाया करो तो मैं तुम को चङ्गा कर दूँगा ।

आर्यनन्दन—मैं सच्चे प्रेम की सौगन्द खाकर कहता हूँ कि ऐसाही करूँगा । बताओ, तुम्हारी झोपड़ी कहाँ है ।

रसलीना—मेरे साथ चलो मैं बता दूँगा । मुझे भी बताओ कि इस बन में तुम कहाँ रहते हो—चलते हो ।

आर्यनन्दन—हाँ हाँ ।

रसलीना—नहीं, मुझे रसलीना कह कर पुकारा करो—आओ बहिन चलैं (सब बाहर जाते हैं)

तीसरा स्थान ।

बन का दूसरा भाग ।

(मूसरचन्द और अतवरिया आते हैं—जयकृष्ण उनके पीछे पीछे आता है)

मूसरचन्द—प्यारी अतवरिया ! आ । जल्दी आ । मैं तेरी बकरियाँ हाँक लाऊँगा—अतवरिया ! क्या अब भी मैं वही हूँ—क्या तुझे मेरा दरिद्र भेस अच्छा लगता है ।

अतवरिया—तुम्हारा भेस ! हे भगवान ! कैसा भेस ।

मूसरचन्द—मैं इस जगह तुम्हारी जाति के लोगों और तुम्हारी बकरियों के बीच में बड़ा चञ्चल चित्त कवीश्वर बना हूँ—जैसे गाथ लोगों में रोम का कवि ओविड़ ।

जयकृष्ण—(मनही मन में) ओ हो ! ऐसी ऊँची विद्या और ऐसे नीच स्थान में रहना—यह तो बन से भी बुरी जगह है ।

मूसरचन्द—जब किसी कवि की कविता का कोई समझने वाला नहीं होता और उसकी बुद्धिमानी का तुरन्त

पुरस्कार नहीं दिया जाता तो कलकत्तेवाली काल कोठरी में बन्द होकर मरने से भी अधिक कष्ट उसको होता है—मैं तो मनाता हूँ कि सरस्वती माता तुझे काव्यरसिक बना देती ।

अतवरिया—मैं नहीं जानती कि काव्यरसिक कैसा होता है! क्या जो बात का पक्का होता है उसे काव्यरसिक कहते हैं? या सचाई को ।

मूसरचन्द—नहीं! बहुत सच्ची कविता भी झूँठी होती है—कामी लोग काव्यरसिक होते हैं—और जब वह कविता में सौगन्द खाते हैं तो कहा जा सकता है कि कामानुराग में कपट झलकता है ।

अतवरिया—तब क्या तुम चाहते हो कि सरस्वती माता मुझे काव्यरसिक बना दे ।

मूसरचन्द—हाँ, सचमुच यही चाहता हूँ । क्योंकि तुम मुझसे शपथ खा कर कह रही हो कि मैं निष्कपट हूँ—अगर तुम कवि होतीं तो मैं आशा कर सकता कि तुम मुझे छल रही हो ।

अतवरिया—क्या तुम चाहते हो कि मैं निर्छल न रहूँ ।

मूसरचन्द—नहीं—जब तक कि तुम कुरूप न हो जाओ—क्यों कि सुन्दरता के साथ सचाई का होना ऐसाही है जैसा मधु में मधुरता ।

जयकृष्ण—(मनही मन में) यह तो बड़ा योग्य और चतुर बिदूषक है ।

अतवरिया—अच्छा—मैं तो सुन्दरी नहीं हूँ इसलिये भगवान से विनती है कि मुझे सती बना दें ।

मूसरचन्द—अरे छिनाल को सती बनाना ऐसाही है जैसा मैले बरतन में अच्छा भोजन रखना ।

अतवरिया—परमेश्वर का बड़ा धन्यवाद है कि मैं कुरूप हूँ पर छिनाल नहीं हूँ ।

मूसरचन्द—अच्छा, कुरूप होने के लिये तो परमेश्वर का धन्यबाद उचित है, रहा चञ्चलपन सो अब आ जायगा—पर चाहे जो कुछ हो मैं तुम्हारे साथ ब्याह करूंगा—और इसके लिये मैं रामपूर के श्रीअलिवर मारतण्डजी पुरोहित के पास हो आया हूँ—उन्होंने कहा है कि बन ही में सही, हम आ जाँयगे और बिबाह करा देंगे ।

जयकृष्ण—(एकान्त में) भाई, यह उत्सव तो हम अवश्य देखेंगे।

अतवरिया—भगवान हम लोगों का मनोरथ सुफल करें ।

मूसरचन्द—सुफल तो करैं पर जो कोई डरपोक हो तो ऐसे अवसर पर ज़रूर सकुचै क्योंकि यहाँ कोई देवस्थान तो है नहीं, जङ्गल ही जङ्गल है—कोई भाई बिरादरी नहीं—सींग बहादुरों के झुण्ड अलबत्ता हैं । अच्छा कुछ चिन्ता नहीं—धीरज बना रहै । सींग एक बुरी चीज़ है, परन्तु है बड़े काम की । बहुत लोग अपनी चीज़ों के गुन नहीं जानते—सच है, बहुतेरे आदमियों के अच्छे सींग होते हैं परन्तु वह उसके गुन नहीं जानते—और क्या ! वह उनकी स्त्री का दहेज है, उनकी निज की कमाई नहीं है—सींग ! वह भी ऐसा कि खाली ग़रीब ही को हो ? नहीं नहीं, अच्छे हरिनों के भी वैसेही होते हैं जैसे दुबले हरिनों के । तो क्या बिवाह न करनेवाला सुखी है ? नहीं । जैसे गाँव की झोपड़ी से शहर का पक्का महल कहीं बढ़ कर है इसी

तरह बिना ब्याहे आदमी के रूखे मुँह से बिना ब्याहे आदमी का खिला मुँह अधिक प्रतिष्ठित है—और इसी तरह—जैसे चतुराई न होने पर भी अपनी रक्षा करना उचित है वैसे ही शृङ्गार के भाव से सींग का होना भी अच्छा है । यह लो अलिवर आते हैं ।

(श्री अलिवर मार्तण्ड आते हैं)

अलिवर मार्तण्डजी । प्रणाम । आप बहुत अच्छे समय पर आये—यह बताइये कि आप सब कर्म यहीं करा दीजियेगा कि किसी देव स्थान पर चलना होगा ।

अलिवर—यहाँ कन्यादान कौन करैगा ।

मूसरचन्द—मैं किसी से इसका दान न लूँगा ।

अलिवर—बहुत ठीक—परन्तु कन्या दान होना चाहिये—नहीं तो यह विवाह विधिपूर्वक न होगा ।

जयकृष्ण—(आगे बढ़ कर) कीजिये ! कीजिये । कन्या दान मैं कर दूँगा ।

मूसरचन्द—हाँ, जय रामजी की । क्या कहना है ! आप भले मिले—बड़े आनन्द से हैं न ? इस मिलने के लिये परमेश्वर आपका मङ्गल करै—मैं आपको देख कर बहुत प्रसन्न हूँ । कैसा बढ़िया खिलौना हाथ लगा है, अच्छा ! कपड़ा पहिनाइये ।

जयकृष्ण—क्यों जी ! विवाह करोगे ।

मूसरचन्द—जी हाँ—जैसे बैल के नाथ, घोड़े के लगाम और बाज़ के घण्टियाँ होती हैं वैसे ही मनुष्य की इच्छाएँ होती हैं और जैसे कबूतर ठोंगैं मारते हैं वैसे ही ब्याह भी हमारा बन्धन होगा ।

जयकृष्ण—और तुम ऐसे भलेमानुस हो कर बन में झाड़ी के नीचे भिखमङ्गों के तरह ब्याह करना पसन्द करते हो—देवस्थान में जाओ और किसी अच्छे पुरोहित को ढूँढ़ो—वह सब कर्म शास्त्र की रीति से करा देगा और तुम्हारे जोड़ी का गँठबन्धन करा देगा—फिर तुम दोनों मौज करना ।

मूसरचन्द—(एकान्त में) मेरा मन तो नहीं है—पर किसी दूसरे पुरोहित की अपेक्षा इन्हीं पुरोहित से मेरा ब्याह होना बहुत अच्छा था । क्योंकि यह मेरा ब्याह विधि से न करा सकेंगे—और विधि से ब्याह न होना ही आगे मुझे अपनी स्त्री त्यागने के लिये एक अच्छा बहाना होगा ।

जयकृष्ण—तू मेरे साथ चल और मेरी सलाह मान ।

मूसरचन्द—प्यारी अतवरिया ! आओ । हमारा तुम्हारा ब्याह ज़रूर होगा ।

बड़े गुरूजी, भले गुरूजी,
मुझे न पीछे छोड़ो तुम ॥
मेरे साथ न तुम अब लागो,
चटपट पूँछ दबा कर भागो'
गुरुपन से मुख मोड़ो तुम ॥
तुमसे ब्याह न कराऊँगा ।

(जयकृष्ण, मूसरचन्द, और अतवरिया जाते हैं)

अलिवर—ऐसे उल्लू के पट्ठों से मेरा काम बन्द होता है ।

चौथा स्थान ।

बन का दूसरा भाग ।

(रसलीना और सुशीला आती हैं)

रसलीना—मुझसे मत बोलो—मैं रोऊँगी ।

सुशीला—तुम भलेही रोओ, पर कृपा कर के यह विचार लो कि मर्द को आँसू बहाना शोभा नहीं देता ।

रसलीना—तो क्या मुझे रोने का कोई कारण नहीं है ।

सुशीला—इतनाही कि जितना जी चाहै । अच्छा रोओ ।

रसलीना—उसके बाल बाल में कपट भरा है ।

सुशीला—जूड़ास*के बालों से भी काले । और उसका प्यार तो जूड़ास का बच्चा ही है ।

रसलीना—इसमें तो सन्देह नहीं कि उसके बाल बड़े अच्छे रङ्ग के हैं ।

सुशीला—बहुतही मनोहर रङ्ग के । और उसकी तुलना भी हो सकती है ।

रसलीना—और उसका प्यार बड़ा पवित्र है ।

सुशीला—उसके ओठ मानो मानिक के बने हैं—देवकन्यायें सतीत्व के कारण उसको चुम्बन नहीं कर सकतीं, देख देख मन में ललचा कर रह जाती हैं ।

रसलीना—पर उसने यह सौगन्द क्यों खाई थी कि आज सवेरे आऊँगा और अभी तक नहीं आया ।

सुशीला—हाँ, अब तक नहीं आया—उसमें सचाई नहीं है ।

---

* जिसने ईसामसीह को धोखा देकर पकड़ा दिया था ।

रसलीना—क्या तुम्हें ऐसा निश्चय है।

सुशीला—हाँ, हमारी समझ में न तो वह कोई चोर है न उठाई-गीरा—पर उसके प्रेम के बारे में हमारा ऐसा विचार है कि वह फूटे बरतन की तरह है या जैसे सड़ा नारियल होता है।

रसलीना—प्रेम के विषय में झूँठा है?

सुशीला—हाँ—जब उसमें प्रेम हो, सो मेरी समझ में तो उसके हैही नहीं।

रसलीना—तुमने बराबर उसको यह सौगन्द खाते सुना है कि मैं प्रेमी था।

सुशीला—"था" और "है" में बड़ा अन्तर है—इसके सिवाय कामी लोगों की शपथ और बजाज लोगों की शपथ की परतीत नहीं होती। इन दोनों की शपथ झूँठ का ही विश्वास दिलाती है—वह इस बन में तुम्हारे पिता बड़े महराज के यहाँ रहता है।

रसलीना—मैं कल बड़े महाराज से मिली थी और उनसे मुझसे बड़ी बातें हुईं। उन्होंने मेरा पितृकुल पूँछा तो मैंने कहा कि मेरा भी जन्म आपके बराबर कुल में हुआ है—इस पर वह हँसे और कहा कि फिर आना, पर जब वहाँ आर्यनन्दन सा पुरुष मौजूद है तो पिताओं की हम लोग क्या बातचीत कर सकतीं हैं।

सुशीला—ओ हो! वह बीर है—वीररस की कविता करता है—वीरता की बातें बोलता है—वीरता भरी क़समें खाता है—और वीरता ही से अपनी प्रिया की छाती में उन शपथों को तोड़ देता है—जैसे कोई पैतरेबाज़ जो

अपने घोड़े के एकही ओर एड़ लगाता है और अपना पटा तोड़ डालता है—पर जिसपर यौवन सवार होता है और जो कुछ मूर्खता करता है उसकी वीरता ही में गिनती है—कौन आ रहा है।

(करन आता है)

करन—मालकिन और मालिक—आप लोग बहुधा मुझसे उस चरवाहों का हाल पूँछा करते थे जो कामार्त होकर झींखा करता था, जिसको आप लोगों ने मेरे पास घास पर बैठा देखा था—और जो उस मानवती गड़रिन की बड़ाई कर रहा था, जिसपर वह आसक्त है।

सुशीला—उसका क्या हुआ।

करन—आप सच्चे कामानुराग का पीला मुँह और घृणा का लाल चेहरा दोनों के बीच का एक बढ़िया खेल देखना चाहते हों तो मेरे साथ चलें, मैं आप लोगों को दिखा दूँ।

रसलीना—आओ चलें। प्रेमियों का तमाशा प्रेमियों को आनन्द देता है—मुझको उसके पास ले चलो, मैं इस नाटक में एक पात्र बन जाऊँगा—(सब बाहर जाते हैं)

पाँचवाँ स्थान।

बन का दूसरा भाग।

(सालिक और फुलिया आती हैं)

सालिक—प्यारी फुलिया—मुझसे इतनी निठुराई न कर—तू मुझसे प्रेम नहीं करती पर यह बात निठुराई से मत कह—देख! जल्लाद नित अपराधियों को सूली पर

चढ़ाते चढ़ाते कितना निठुर हो जाता है पर वह भी एकाएक गले पर छुरो नहीं चला देता—पहिले क्षमा माँग लेता है—क्या तेरा हिया उससे भी कठोर है ।

(रसलीना और सुशीला आती हैं, करन उनके पीछे पीछे आता है)

फुलिया—मैं तुझे सूली पर चढ़ानेवाली बनना नहीं चाहती ? मैं तुझसे दूर भागती हूँ—मैं तुझे कष्ट देना नहीं चाहती—तू कहता है कि मेरी आँखें हिये को बेधतीं हैं यह ठीक है; उचित है और बहुत सच है; नयन सहजही सुकुमार और लजीले होते हैं, तनिकसी शङ्का में बन्द हो जाते हैं, उनको तुम निठुर और घातक कहो तो कह लो—अब मैं अपने मन से तुम्हारे ऊपर कटाक्ष करती हूँ—जो मेरे नयन सचमुच बर्छी का काम करते हैं तो तुम अचेत हो जाओ—धरती पर गिर पड़ो—और ऐसा न हो तो लज्जित हो और ऐसा झूँठ मत कहो कि मेरे नयन घातक हैं—अच्छा मेरे नयनों ने जो घाव तुम्हारे शरीर में किये हैं दिखलाओ तो—जो देंह में एक सुई भी गड़े तो उसका घाव होगा—एक काँटा भी लगेगा तो उसका चिन्ह होगा—पर मेरे नयनों के घाव का कोई चिन्ह तुम्हारी देंह में नहीं है—और न मेरे नयन तुमको कुछ कष्ट दे सकते हैं—और न इनमें कोई ऐसी शक्ति है जो किसी को कष्ट दे सकें ।

सालिक—प्यारी फुलिया ! तेरा मन किसी नवयुवक की सुन्दरता पर रीझ जाय, तब अलबत्ता तुझको मालूम हो जायगा कि नयनों के तीक्ष्ण बाण कैसे बेधते हैं ।

फुलिया—अच्छा तो जब तक ऐसा न हो तब तक तुम मेरे पास मत आओ—जब ऐसा हो जाय तब तुम मेरी हँसी भलेही करना—और मेरे ऊपर दया मत करना—क्यो कि तब तक मैं भी तुमपर करुणा न करूँगी ।

रसलीना—(आगे बढ़ के) बता तो तू किस माँ की बेटी है—कि किसी दुखिया को इतना सता कर सुखी होती है—तू कुछ ऐसी सुन्दर भी नहीं है कि अँधेरे में बिना दिये के उजाले पलँग पर न जा सकै—इसी पर इतना गुमान ? क्यों ? मुझको क्यों घूरती है!? मुझे नहीं मालुम होता कि बाज़ार में साधारण रीति से नीलाम होनेवाली चीज़ से कुछ अधिक विशेषता तुझ में है—परमेश्वर कुशल करैं—जान पड़ता है कि घूर कर मेरी आँखों को झपक देना चाहती है—अरी गुमानिन, मैं सच कहता हूँ ऐसा मत समझ कि तेरी टेढ़ी भौंहैं, तेरे घूँघरवाले काले बाल, तेरे नरम गाल—तेरी छवि छटा में यह सामर्थ्य है कि मैं रीझ जाऊँ । अरे मूढ़ चरवाहे, तू क्यों इसके पीछे लगा है जो तुझपर कुतिया के तरह भूँकती है—तू इससे कहीं अधिक सुन्दर है—ऐसेही मूर्ख लोग कुरूप लड़कों से संसार को भर देते हैं—दर्पन इसकी कुछ बड़ाई नहीं करता, तुमही लट्टू हो । और तुम्हारी खुशामद ही से यह अपने को रूपवती समझती है—पर प्यारी तनिक अपनी दशा देख—थोड़ा झुक जा—परमेश्वर को धन्यवाद दे—कि ऐसा बढ़िया आदमी तेरे ऊपर लट्टू है—मैं तेरे भले के लिये कहता हूँ—मैं सच कहता हूँ यह भले जान ले कि जब चाहो बेंचो पर तुम ऐसा माल नहीं हो कि सब लोग

तुम्हारे गाहक हों—इस पुरुष से क्षमा माँगो—इससे प्रेम करो—इसकी अवज्ञा कर के अपने को कलङ्कित करती हो—अच्छा हे चरवाहे! अब इससे बिवाह कर—परमेश्वर तुम लोगों का भला करैं।

फुलिया—भला! भला!! धमकाओ—बरसों धमकाते रहो—मैं तुम्हारी धमकी भले ही सुनूँगी परन्तु इसकी प्रेम की बात न सुनूँगी।

रसलीना—इस पुरुष का प्रेम तो तुम्हारे चिड़चिड़ेपन पर है। और यह मेरे क्रोध से प्रेम करैगी—जब यह क्रोध की दृष्टि से तुम्हारे ओर देखैगी तो मैं इसको गालियों की चटनी चखा दूँगा—(फुलिया से) मेरी ओर क्यों टक-टकी लगाती है।

फुलिया—क्यों? मैं तुम्हारा अनभल नहीं चाहती।

रसलीना—कृपा कर के मुझसे प्रेम करने का मनसूबा न करना—क्योंकि मैं शराबी को प्रतिज्ञाओं से भी बढ़कर झूँठा हूँ, इसके सिवाय मैं तुमको चाहता भी नहीं—जो तू मेरा घर जानना चाहती है तो वह यहाँ पासही वृक्षों के नीचे है—बहिन! चलती हो? चरवाहे! इसके साथ हो ले—आओ बहिन! अरी चरवाहिन! इसे प्रेम से देख—गुमान मत कर—संसार में जो इसे सुन्दर कहै वह धोखा खाता है। चलो भेड़ों के पास चलैं।

(रसलीना, सुशीला और करन जाते हैं)

फुलिया—प्यारे चरवाहे, जो तुम कहते थे वह अब मेरी भी दशा हो रही जान पड़ती है—पहिले ही दर्शन में जिससे मन न लगा फिर उस पर प्रेम कभी नहीं होता।

सालिक—प्यारी फुलिया।

फुलिया—क्या कहते हो।

सालिक—प्यारी फूला! मुझपर दया करो।

फुलिया—मेरे अच्छे सालिक! तुम्हारे लिये मुझे बड़ा सोच है।

सालिक—जहाँ सोच होता है वहाँ सहायता भी होती है—तुम मेरे प्रेम के लिये सोच करती हो तो प्रेम दान दो, अपना सोच और मेरा दुःख दोनों हरो।

फुलिया—मेरा तुम पर प्रेम है पर वैसाही जैसा कि पड़ोसी का पड़ोसी पर होता है।

सालिक—मैं तो तुम्हारे साथ ब्याह करना चाहता हूँ।

फुलिया—क्यों—यह लालच? सालिक! एक दिन वह था कि मैं तुमसे भागती थी—पर इससे यह न समझना कि अब तुम पर मैं रीझ गई—तो भी तुम्हारी रस भरी बातें जिनसे मैं पहिले चिढ़ती थी अब सुन लिया करूँगी—और तुम्हारी खुशी हो तो मैं तुम्हें किसी काम पर भी लगा दूँगी—पर इससे कुछ और बात की आस मत रखना।

सालिक—मेरा प्रेम सच्चा और पूरा है—तुम्हारे बिना दया किये बड़ी दीन दशा में पहुँच गया हूँ—तुम दया दृष्टि कर के मुसुका दिया करो तो भी मेरे जीने का सहारा हो जाय।

फुलिया—जो सुन्दर पुरुष अभी बातें करता था उसको जानते हो?

सालिक—अच्छी तरह तो नहीं जानता, पर कभी कभी भेट हुई है—उसी गँवैये का घर बाड़ा सब इसने मोल ले लिया है।

फुलिया—उसको पूँछती हूँ इससे यह न समझना कि मैं उसकी सुन्दरता पर रीझ गई हूँ—वह है बड़ा ढीठ, और

बातें भी बहुत अच्छी बोलता है—पर मुझे बातों से क्या मतलब—पर वह भी धन्य है जिसकी बातों से चित्त प्रसन्न हो। वह सुन्दर है और घमंडी भी है—है वह अच्छा आदमी। उसके अच्छे गुन ही उसकी सुन्दरता हैं—बातों से जो कुछ अपराध उसने किया था उसकी आँखों ने उसको तुरन्त निपटा दिया। वह बहुत लम्बा तो नहीं है पर उमर के देखते कुछ लम्बा है—उसके पाँव लम्बे हैं फिर भी अच्छे लगते हैं—उसके लाल लाल ओंठ, गुलाबी गाल, बड़ी बड़ी आखें—सालिक! सच मानो, स्त्रियाँ इस पर लट्टू हो जायँ—मैं न तो उस पर मोहित हो गई हूँ और न उससे घृणा करती हूँ—बरन् प्रीति करने के बदले उससे हटने के लिये मेरे पास कई कारण हैं—उसको मुझे धमकाने का क्या हक़ था—उसने मुझे कुरूप कह के मेरी निन्दा की—मुझे बड़ा अचरज है कि मैंने उसको उत्तर क्यों नहीं दिया—उत्तर न देना क्षमा करना नहीं कहा जा सकता—अच्छा! यह सब बातें उसको मैं एक चिट्ठी में लिखूँगी—और तुमको वह चिट्ठी उसके पास ले जानी पड़ेगी—सालिक! ले जाओगे न।

सालिक—हाँ फूलमती, बड़ी ख़ुशी से।

फुलिया—मैं अभी लिखती हूँ—सब बातें मेरे मन में भरी हैं उनको मैं थोड़े में लिखूँगी और उसके साथ निठुरता का बर्ताव करूँगी—सालिक! मेरे सङ्ग चलो—(दोनों बाहर जाते हैं)

चौथा अङ्क।

पहिला स्थान—आरण्यक बन।

(रसलीना, सुशीला और जयकृष्ण आते हैं)

जयकृष्ण—सुन्दर युवक! कृपा कर के अपना हाल तो मुझे बताओ।

रसलीना—लोग कहते हैं कि तुम तो सदा चिन्ताही में डूबे रहते हो।

जयकृष्ण—यह सच है—मुझे हँसने मुसकराने के बदले दिन रात चिन्ता में डूबा रहना ही अच्छा लगता है।

रसलीना—बहुत हँसना और बहुत चिन्ता, दोनों बातें बुरी हैं—ऐसा आदमी तो पागल होता है और सब लोग उसकी निन्दा करते हैं।

जयकृष्ण—क्यों? उदासीन रहना और कुछ न बोलना अच्छी बात है।

रसलीना—वाह! तब तो खम्भा होना भी अच्छा है।

जयकृष्ण—हमारी उदासीनता न तो किसी विद्वान कीसी है कि किसी के बराबरी की चिन्ता हो—न किसी गवैये की सी है कि मनमानी ही हो—न राजदरबारी की है जो अभिमान के लिये हो—न तो किसी सैनिक योद्धा की है जो नाम के लिये हो, न किसी नीतिज्ञ कीसी है, जो राजनीति के लिये हो—न तो किसी कुल स्त्री कीसी है, जो बात बात पर झिझकें और न कामियों की है जिसमें ये सब बातें हैं—मेरी उदासीनता स्वाभाविक ही है—अनेक गुणों से बनी हुई है

और बहुत से पदार्थों से निकाली गई है—और सच-मुच मेरे देस घूमने के भिन्न भिन्न बिचारों का फल है कि जिनके सोचने में मैं उदासीन बना रहता हूँ ।

रसलीना—यात्रा करनेवाले ! तब तो मुझे पूरा विश्वास है कि तुम्हारे उदासीनता के बड़े बड़े कारण होंगे—डर, क्या तुमने अपनी भूमि दूसरों की भूमि देखने के लिये बेच दी—बहुत देखना, पास कुछ न होना, धनी दृष्टि और दरिद्र हाथों का स्वामी बनना है ।

जयकृष्ण—हाँ, मुझे सब बातों का अच्छी तरह ज्ञान हो गया है ।

रसलीना—और इसी ज्ञान से तुम उदासीन बन गये हो—मैं तो उदासीनों की अपेक्षा प्रसन्न करनेवाले बिदूषकों का सङ्ग अच्छा समझता हूँ—उदासीन होने के लिये मैं देशाटन नहीं करता ।

(आर्यनन्दन आते हैं)

आर्यनन्दन— रसलीना मम प्राण पियारी ।
सदा रहै सब भाँति सुखारी ॥

जयकृष्ण—ओ हो ! तुम तो पद्य में बात चीत करते हो—भग-वानही तुम्हारी रक्षा करैं—(बाहर जाता है)

रसलीना—जै रामजी ! धन्य हो पथिक महाशय ! अपना मुँह देखो ! विचित्र कपड़े पहनो । अपने देश के अच्छे पदार्थों की निन्दा करो—अपनी जन्मभूमि का प्रेम छोड़ो—परमेश्वर ने जो तुम्हें स्वरूपवान बनाया है उसके कृतज्ञ मत हो—मैं नहीं मानती कि तुम नाव पर बैठ कर कहाँ गये थे—क्यों आर्यनन्दन ? कैसे ? अब तक कहाँ रहे ? तुम कामातं हो ? जो ऐसा छल

मेरे साथ फिर करना है तो अब कभी मेरे सामने मत आना।

आर्यनन्दन—मेरी प्यारी रसलीना, मैं अपने वादे से एक घण्टा पीछे आया हूँ।

रसलीना—प्रेम में एक घण्टे की प्रतिज्ञा भङ्ग करना! जो मनुष्य एक मिनट के हज़ार खण्ड करै और फिर उनमें से एक खण्ड के हजारवें भाग के बराबर भी प्रेम प्रतिज्ञा भङ्ग करै तो और चाहे जो कहै परन्तु मैं नहीं कह सकती कि वह प्रेम से व्याकुल है।

आर्यनन्दन—प्यारी रसलीना, क्षमा करो।

रसलीना—नहीं! तुम ऐसी ढील से रहना चाहते हो तो मेरे सामने कभी मत आना—तब तो मैं तुम्हारे समान किसी घोंघे से भी व्याह करने को राज़ी हो जाऊँगी।

आर्यनन्दन—घोंघे के साथ।

रसलीना—हाँ! घोंघे के साथ—क्योंकि वह बहुत धीरे धीरे चलता है तो भी अपना घर अपने सर पर रखता है—जो मेरे बिचार में उत्तम स्त्री भी धन है और उस धन से बढ़ कर जो तुम किसी स्त्री को दे सकते हो—इसके सिवाय वह अपना भाग्य अपने साथ रखता है।

आर्यनन्दन—कैसा भाग्य।

रसलीना—सींग।

आर्यनन्दन—मेरी रसलीना सती है*

रसलीना—और मैं तुम्हारी रसलीना ही हूँ।

---

* यूरप में यह माना जाता था कि जिसकी स्त्री व्यभिचारिणी हो उसके सींग निकल आते हैं।

सुशीला—तुमको यह ऐसा कह के जी समझा ले पर इसकी रसलीना तुमसे बढ़ कर सुन्दर है।

रसलीना—अच्छा आओ मुझसे प्रेम करो, क्योंकि इस समय मेरा चित्त प्रसन्न है—हो सकता है कि मैं तुम्हारा कहना मान लूँ—जो मैं तुम्हारी वही सच्ची रसलीना होती तो तुम मुझको क्या कहते ।

आर्यनन्दन—बोलने से पहिले मैं प्यार करता ।

रसलीना—नहीं! पहिले तुम्हें बोलना ही चाहिये—और जब तुम्हारा मुँह बन्द न कर दिया जाय, तुम प्यार कर सकते हो—बड़े बक्ता जब उनको कोई बात नहीं सूझती तो खाँसने लगते हैं—और इसी तरह कामी आदमियों से जब कुछ और नहीं बन पड़ता तब उनको प्यार ही उचित हो जाता है।

आर्यनन्दन—और प्रिया प्यार कराना न चाहै तो।

रसलीना—तब तो वह तुमसे बिनती करायेगी और एक नयी बात पैदा हो जायगी।

आर्यनन्दन—भला अपनी प्राणप्यारी से कौन बाहर होगा।

रसलीना—जो मैं तुम्हारी प्राणप्यारी होती तो तुम्हारा मुँह बन्द कर के तुमको बता देती—ऐसा न कर सकती तो जानिये कि मेरी भलमन्सी मेरी बुद्धिमानी से घट कर है।

आर्यनन्दन—और मेरी प्रार्थना पर क्या?

रसलीना—तुम्हारा भेस मुझे पसन्द नहीं पर तुम्हारी प्रार्थना से बिमुख नहीं हूँ—क्या मैं तुम्हारी रसलीना नहीं हूँ?

आर्यनन्दन—मुझे यह कहने में कुछ हर्ष होता है कि तुम हो, क्योंकि इससे उसकी चर्चा होती है ।

रसलीना—अच्छा ! तो मैं तुम्हें बताये देती हूँ कि रसलीना हो कर मैं तुमसे बात चीत नहीं करना चाहती ।

आर्यनन्दन—तब तो मैं मर जाऊँगा ।

रसलीना—नहीं नहीं ! तुम्हें कसम है—मौत से मरो—यह जगत करोड़ों अरबों बरस का पुराना है पर आज तक ऐसा नहीं हुआ कि कोई प्रेमही के कारण मरा हो—ट्राईलस का सर यूनानी गदा से फोड़ा गया—पर जहाँ तक हो सका उसने इसके पहिलेही मरने का प्रबन्ध कर लिया और प्रेमियों में आदर्श गिना जाता है । "हीरो" कुमारी के योगिन हो जाने पर भी "लीयानडर" बरसों तक जीता रहता जो गरमी की रात में "हैलेस्पान्ट" सर में नहाने के लिये जाता हुआ दलदल में फँस कर न डूब गया होता—पर उस समय के मूर्ख इतिहास लिखनेवालों ने उसकी मृत्यु का कारण "हीरो" का प्रेम ही समझ लिया । यह सब झूँठ है—लोग अपने अपने समय पर मरते आये हैं—और चील्ह कौवे उनके शरीर को खाते रहे हैं—कामानुराग से ऐसा नहीं हुआ है ।

आर्यनन्दन—मेरी सच्ची रसलीना ऐसी नहीं हो सकती—मैं सच कहता हूँ कि उसकी क्रोध भरी दृष्टि मुझे मार डालने में पूरी समर्थ है ।

रसलीना—मैं शपथ खा कर कहती हूँ कि इस तरह एक मक्खी भी नहीं मर सकती—पर आओ अब मैं तुम्हारी

सुशीला रसलीना बनी जाती हूँ—और जो तुम्हारी इच्छा हो माँगो, मैं दूँगी।

आर्यनन्दन—तब तो प्यारी रसलीना मुझसे प्रेम करो।

रसलीना—हाँ! मैं प्रेम करूँगी—शुक्रवार को, शनीवार को और सदा।

आर्यनन्दन—और मुझसे ब्याह भी करोगी न।

रसलीना—हाँ हाँ—और ऐसे बीसों से।

आर्यनन्दन—तुम क्या कहती हो।

रसलीना—क्या तुम अच्छे नहीं।

आर्यनन्दन—क्यों नहीं।

रसलीना—तो भला अच्छी चीज़ कोई क्यों छोड़ैगा—आओ, बहिन! तुम पुरोहित बनो और हमारा ब्याह कर दो। आर्यनन्दन, लाओ हाथ—बहिन! तुम क्या कहती हो।

आर्यनन्दन—हम लोगों का ब्याह करा दो।

सुशीला—मुझे तो बिबाह के मन्त्र पढ़ने नहीं आते।

रसलीना—तब तुम इस तरह भाषा में ही कहना कि आर्यनन्दन! क्या तुम—

सुशीला—अच्छा—हे आर्यनन्दन! क्या तुम इस रसलीना को अपनी अर्द्धाङ्गिनी बनाओ गे।

आर्यनन्दन—हाँ मैं बनाऊँगा।

रसलीना—कब?

आर्यनन्दन—क्यों, अभी। जितनीही जल्दी ब्याह हो जाय।

रसलीना—तब तुमको यह कहना चाहिये कि रसलीना को अपनी अर्द्धाङ्गिनी बनाता हूँ।

आर्यनन्दन—रसलीना मैं तुमको अपनी अर्द्धाङ्गिनी बनाता हूँ।

रसलीना—मैं तुम्हारे अधिकार के विषय में कुछ पूँछ सकती हूँ। पर आर्यनन्दन! मैं तुमको अपना पति बनाती हूँ—जब कन्या पुरोहित के सामने आती है तब उसके विचार बहुत दूर दूर तक दौड़ जाते हैं।

आर्यनन्दन—सब विचारों की यही दशा है—इनके पङ्ख होते हैं।

रसलीना—अब मुझे यह बताओ कि मुझको पाकर तुम कब तक अपनी अर्द्धाङ्गिनी बनाये रहोगे।

आर्यनन्दन—सदा और दिन भर।

रसलीना—सदा के बिना एक दिन का नाम लो—नहीं—आर्य-नन्दन! ऐसा नहीं! पुरुष जब किसी स्त्री से ब्याह करना चाहते हैं तब अप्रैल के महीने की तरह होते हैं—और जब बिबाह हो जाता है तो दिसम्बर बन जाते हैं—कन्या जब तक कुँवारी रहती है तब तक नई रहती है और ब्याह होते ही बदल कर कुछ और ही हो जाती है—जैसे बराबरी का मुर्गा अपनी मुर्गी पर सन्देह किया करता है मैं उससे भी बढ़ कर तुम पर सन्देह किया करूँगी—जैसे पानी बरसते समय काकातूआ टें टें करता है मैं उससे भी बढ़ कर टें टें करनेवाली हो जाऊँगी—बन्दर से भी बढ़कर दाँत दिखाऊँगी—अपनी इच्छाओं के लिये बँदरियों से भी बढ़ कर अधीर रहूँगी—डाइन की तरह बिना प्रयोजन ही रोऊँगी—जब तुम हँसना चाहोगे उस समय मैं रोने लगूँगी। और जब तुम सोओगे तब मैं ठट्ठा मार के हँसने लगूँगी।

आर्यनन्दन—क्या मेरी रसलीना ऐसा करैगी।

रसलीना—मैं सच कहती हूँ ऐसाही करैगी।

आर्यनन्दन—हाय ! पर वह तो बड़ी समझदार है।

रसलीना—इसीसे तो ऐसा करैगी—जितनी समझदार उतनी ही हठोली—स्त्री की बुद्धि पर किवाड़ लगा दो वह दरार में हो कर बाहर निकल जायगी—उसको भी बन्द कर दो तो वह कुञ्जी लगाने के छेद में हो कर बाहर निकल जायगी—उसको भी बन्द कर दो तो अँगेठी से धूयें के साथ बाहर चली जायगी।

आर्यनन्दन—रसलीना—अब दो घण्टे के लिये तुमसे अलग होता हूँ।

रसलीना—प्राणप्यारे—मैं दो घण्टे तुम्हारा वियोग नहीं सह सकती !

आर्यनन्दन—मुझे बड़े महाराज के साथ भोजन करना है, मैं दो बजे फिर तुम्हारे पास आ जाऊँगा।

रसलीना—अच्छा—जहाँ चाहो जाओ—जो चाहो करो—मैं पहिले ही जानती थी कि तुम कैसे निबहोगे—मेरे मित्रों ने भी कह दिया था—पर तुम्हारी खुशामदी जोभ ने मुझे मोहित कर लिया—अभी एक ही बिगड़ा है—अच्छा हे मृत्यु ! आ—तुम दो बजे की कह रहे हो—

आर्यनन्दन—प्यारी रसलीना—हाँ।

रसलीना—मैं सच कहती हूँ इसमें कुछ हँसी नहीं है—और परमेश्वर मुझे बचावै—मैं कसम खा के कहती हूँ कि अगर तुमने थोड़ी भी प्रतिज्ञा भङ्ग की—और एक मिनट की भी देर की तो जैसा तुम्हारी असली रसलीना समझती उससे भी बढ़ कर मैं तुमको बिलकुल धोखेबाज़, झूँठों का सरदार और छली समझूँगी—यह सब बिचार कर के अपनी बात पूरी करना।

आर्यनन्दन—मैं अपनी बात वैसेही पूरी करूँगा जैसा अपनी सच्ची रसलीना के साथ करता—अच्छा अब जाता हूँ।

रसलीना—अच्छा—यह समय ही बड़ा पुराना न्याय करने वाला है। हमारा तुम्हारा न्याय समय ही करैगा—जाओ—परमेश्वर मङ्गल करै (आर्यनन्दन बाहर जाता है)

सुशीला—तुमने अपने प्रेम में स्त्रियों का नाम डुबा दिया—हम तुम्हारी खोपड़ी पर चढ़ के तुम्हारी धोती और जुर्राब उतार लेंगीं जिसमें सब दुनिया जान जाय कि इस चिड़ियाँ ने अपने घोंसले में बैठ कर क्या किया है।

रसलीना—अरी मेरी प्यारी छोटी बहिन! क्या तुम नहीं जानती कि मैं कामानुराग में इतना डूब रही हूँ जिसकी थाह नहीं। मेरा प्रेम पुर्तगाल की खाड़ी के तरह अगाध है।

सुशीला—या यह कहो कि अथाह बे जड़ का ही है—उसमें तुम जितनी प्रेमवर्षा करती हो उतना ही समा जाता है।

रसलीना—नहीं, वह अन्धा दुष्ट मनसिज काम जो पागलपने से जनमा था और सब को अन्धा बना देता है वही बता सकता है कि मेरा प्रेम कितना गहिरा है—मैं तुझे साफ़ बता देती हूँ कि मैं आर्यनन्दन के बिना नहीं रह सकती—और जब तक वह न आयेगा मैं किसी छाँह के स्थान में बैठ कर बिसूरोंगी।

सुशीला—और मैं भी सोऊँगी (दोनों बाहर जाती हैं)

दूसरा स्थान।

बन का दूसरा भाग।

(जयकृष्ण और सरदार लोग आते हैं)

जयकृष्ण—हिरन को किसने मारा है।

पहिला सरदार—महाशय! मैंने।

जयकृष्ण—तब तो तुम्हें रूम देश जीतने वाले के समान, महाराज के सामने पेश करना चाहिये और उस हरिन के सींग तुम्हारे शिर पर बिजय चिन्ह के अर्थ लगा देने चाहियें—इस विषय का कोई गीत भी जानते हो।

दूसरा सरदार—हाँ हाँ।

जयकृष्ण—अच्छा तो फिर गाओ—कोई राग हो। धूम धड़का होना चाहिये।

गीत।

का पइहौ हरिनी के बधन में।
सींग लेइ माथे मा मढ़िहौ खाल पहिरिहौ तन में॥
मास खाय के नरक भोगिहौ सोच नहीं कछु मन में।

(सब मिल कर गाते हैं)

प्यारे, गावहु गीत सकल मिल बन में।
मूरख दास बुरा जनि मानो सिर पर सींग धरन में।
यह तौ मुकुट तुम्हारे ही हित लाज कौन पहिरन में॥
तुम्हरे बापहु ने यहि पहिरो पहिरिन तुम्हरे दादा।
यहि में लाज शङ्क जनि मानो कुल को है मरयादा॥
सींग भी जड़ लो खाल भी मढ़ लो और लगालो पूँछ।
लाज शङ्क तजि नाचो कूदौ घृणा करौ जिन छूँछ॥

तीसरा स्थान ।

बन का दूसरा भाग ।

(रसलीना और सुशीला आती हैं)

रसलीना—अब तुम क्या कहती हो ? क्या दो नहीं बज चुके ? आर्यनन्दन नहीं आये ।

सुशीला—मैं सच कहती हूँ कि वह प्रेम से बिकल हो कर अपनी तीर धनुही ले कर कहीं सोने चला गया है—देखो यह कौन आता है ।

(सालिक आता है)

सालिक—हे सुन्दर युवक ! यह सन्देश लीजिये (पत्रिका दे कर) मेरी प्यारी फुलिया ने यह चिट्ठी तुम्हें दी है—मुझे इसका मतलब नहीं मालूम होता है । यह चिट्ठी क्रोध से भरी हुई है—मुझे क्षमा करना क्योंकि इसमें मेरा कुछ अपराध नहीं, मैं तो निरा सन्देसा लानेवाला हूँ ।

रसलीना—इस चिट्ठी को देख कर धीरज भी चकित हो जाय और वृथा अभिमान करने लगै—इसको सहले जानो सब कुछ सह लिया—वह लिखती है कि मैं सुन्दर नहीं हूँ—सदाचार नहीं जानता—वह मुझे अभिमानी बनाती है—वह कहती है कि अगर पुरुष गूलर के फूल के तरह दुर्लभ हो जाय तब भी वह मुझसे प्रीति नहीं कर सकती—परमेश्वर जानै; उसकी प्रीति ऐसा खरगोश नहीं है जिसके शिकार की मुझे चाह हो—वह मुझे ऐसा क्यों लिखती है—अच्छा सालिक ! यह सब तुम्हारी ही गढ़न्त है ।

सालिक—नहीं साहब! मैं सच कहता हूँ मैं कुछ नहीं जानता फुलिया ही ने इसे लिखा है।

रसलीना—अजी तुम मूर्ख हो! और प्रेम की हद्द को पहुँच गये हो—मैंने उसका हाथ देखा था जैसे खुरदुरे चमड़े का हो, बलुवे पत्थर के रङ्ग का था—मैं तो समझा था कि पुराने दस्ताने पहिने है—पर उसके हाथ ही थे—घर का धन्धा करनेवाली की तरह उसका हाथ है—पर इसका क्या मतलब—मैं तो कहता हूँ कि यह बातें उसका नहीं सूझीं—यह पुरुष की गढन्त है और लिखा है उसने।

सालिक—हाँ साहब, उसी का लिखा है।

रसलीना—नहीं जी! यह झगड़ा करानेवाला निठुराई से भरा हुआ लेख है—जैसे लड़ाई की बदाबदी करते हैं, जैसे कोई तुर्क किसी ईसाई को फटकारै वैसेही वह मुझे फटकारती है—स्त्री के कोमल चित्त से ऐसा कठोर लेख नहीं निकल सकता—ऐसे काले शब्द कि जिनका अभिप्राय उनके स्वरूप से भी काला है! तुम यह चिट्ठी सुनना चाहते हो।

सालिक—हाँ अगर आप कृपा कर के सुना दें—क्योंकि मैंने अब तक इसको नहीं पढ़ा है—हाँ, फुलिया की निठुराई बहुत सुन चुका हूँ।

रसलीना—वह मुझको फूल की नाईं मलती है—सुन, वह कठोर कैसा लिखती है—(पढ़ती है)

कै तुम देव मनुज तन धारत।
कारिन के कोमल हिय जारत॥

सालिक—इसको तुम ताना कहते हो ?

रसलीना—(पढ़ती है)

अपनी देव-प्रकृति तुम त्यागे ।
तरुनिन हिय बेधन में लागे ॥

क्या तुमने ऐसा ताना कभी पहिले भी सुना है (पढ़ती है)

प्रेम करन मानुष जब आये ।
ते न कबहुँ मेरे मन भाये ॥

मुझको पशु बनाती है ।

मान भरे जो नैन तुम्हारे ।
जो तन मन हरि सकै हमारे ॥
जब चितवन माधुरी चितैहैं ।
का जानै धौका करि लैहैं ॥
तुम जब मोहिं उराहन दीन्हा ।
तेही छुन मो मन हरि लीन्हा ॥
करिहौ जबहिं प्रेम की बतियाँ ।
काकी उमगि न ऐहैं छतियाँ ॥
यह पाती जेहि हाथ पठावत ।
सो न थाह मो मन की पावत ॥
यहि सन तुम सब कहौ सँदेसा ।
करो न यहि महँ नेकु अँदेसा ॥
तन मन सब तुम पर मैं वारा ।
करो दया करि अङ्गीकारा ॥
जो न मानिहौ विनय हमारी ।
तजौं प्रान है दासि तुम्हारी ॥

सालिक—यह चिढ़ाना है ।

सुशीला—हाय बेचारा बड़ा दुखी है ।

रसलीना—तुम इस पर दया करती हो ? नहीं, यह तनिक भी दया के जोग नहीं है। क्यों, तू ऐसी स्त्री से प्रीति करैगा कि जो अपने प्रेम के लिये तुझ को दूत बनाती है—और तेरे साथ ऐसा झूँठा व्यवहार करती है ? यह बात तो सहने की नहीं—पर तू तो उसके प्रेम में एक पालतू साँप सा हो गया है—अच्छा ! तू उसके पास जा और यह कह दे कि अगर वह मुझसे प्रेम रखती है तो मैं उसको यह आज्ञा देता हूँ कि वह तुझसे प्रीति करै—अगर वह तुझसे प्रीति न करैगी तो मैं उसको कभी ग्रहण न करूँगा—जब तक कि तू उसके लिये मुझसे प्रार्थना न करै—अगर तू सच्चा प्रेमी है तो जल्द यहाँ से चला जा और कुछ मत बोल। यहाँ बहुत से लोग आ रहे हैं (सालिक जाता है)

(अलिवर आता है)

अलिवर—जै राम जी की—मेरी आप लोगों से यह बिनती है, आप जानते हों तो बता दो कि इस बन के किनारे आलके कुञ्ज से मिला हुआ भेड़ों का बाड़ा कहाँ है।

सुशीला—यहाँ से पच्छिम थोड़ीही दूर पर यह जो पानी बहने की आवाज़ सुनाई देती है उसके पासही, गँधैली गोंदी की पाँती है। उसको दाहिने हाथ छोड़ते हुये आगे बढ़ोगे तो तुरन्तही उस जगह पहुँच जाओगे—पर इस समय तो वह घर सूना है—और वहाँ कोई नहीं है।

अलिवर—आँखों को, जीभ को कुछ लाभ हो तो मुझे भी कृपा कर के बतला दीजिये कि आप लोग कौन हैं ? ऐसे कपड़े और ऐसी दशा ! यह पुरुष सुन्दर है पर इसका

स्त्री का सा आकार है और जान पड़ता है कि बड़ी बहिन है—पर यह स्त्री नाटी है और अपने भाई से कुछ साँवली है—क्या उस घर की मालकिन तुम्हीं तो नहीं हो जिसको मैं ढूँढ़ रहा हूँ।

सुशीला—अगर किसी के पूँछने पर मैं कहूँ कि, हाँ "मैं ही हूँ" तो इसमें कुछ अभिमान की बात नहीं है।

अलिवर—आर्यनन्दन ने आप दोनों को प्रणाम कहा है और उस युवक के पास जिसको वह रसलीना कहा करता है यह लोहू भरा रूमाल भेजा है—क्या तुम्ही हो।

रसलीना—हाँ मैंही हूँ—इससे क्या जानूँ।

अलिवर—यह बतलाने में मुझे कुछ लाज आती है कि मैं कौन हूँ, कैसे, क्यों कर, और कहाँ यह रूमाल लोहू में डूबा।

सुशीला—कहो तो।

अलिवर—आज जब वीर आर्यनन्दन तुमसे यह कह कर गया कि एक घण्टे में फिर आऊँगा—तब भगवान की माया देखो कि उसको बन में घूमते हुये और प्रेम की मीठी और कडुई कड़वी चबाते हुये क्या दिखाई दिया कि एक बड़ा पुराना साल का पेड़ है, उसकी डालियों पर पुरानी होने के कारण काई जम रही है, और उसमें पत्ते नहीं हैं, उसी के नीचे एक दीन दुखिया जिसकी देह पर बहुत बाल जमे थे पड़ा हुआ है—और उसकी गरदन पर एक हरे रङ्ग का चमकीला बड़ा बिसैला साँप क्रुद्ध हो कर लपटा है और अपना फन उसके मुँह पर फैलाये हुये है—आर्यनन्दन को देख कर परमेश्वर की कृपासे वह साँप झट

अलग हो गया और झाड़ी में घुस गया—उसी झाड़ी की आड़ में एक सिंहिनी घात में बैठी थी और यह राह देख रही थी कि वह आदमी कब हिलै—क्योंकि बन के राजा पशु का ऐसा स्वभाव होता है कि मुरदे पर कभी चोट नहीं करते—यह देख कर आर्य-नन्दन उसके पास गया तो देखा कि वह उसका बड़ा भाई है।

सुशीला—हाय ! मैंने उसको उसी भाई का हाल कहते सुना है कि वह बड़ा अन्यायी था।

अलिवर—हाँ, उसका यह कहना ठीकही था क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि सचमुच वह बड़ा अन्यायी और अधर्मी था।

रसलीना—तब आर्यनन्दन ने क्या किया ? क्या उसने अपने भाई को उसी जगह भूखी सिंहिनी का आहार बनने को छोड़ दिया।

अलिवर—दो बार उसने चलना चाहा और ऐसाही निश्चय भी कर लिया था—पर दया के कारण और सहज सनेह के कारण, जो कि ऐसे समय पर प्रबल हो जाता है वह उस सिंहिनी से लड़ने लगा और तुरन्त उसको मार गिराया—इस भयानक लड़ाई के अवसर में मैं नींद से जाग उठा।

सुशीला—क्या तुम उसके भाई हो।

रसलीना—क्या तुम वही हो जिसके प्राण उसने बचाये हैं।

सुशीला—क्या तुम वही हो जिसने कई बार उसके मारने का उपाय किया था।

अलिवर—हाँ । अब मैं वह नहीं हूँ—क्योंकि अब मैं जो कुछ हो गया हूँ वह परिवर्तन बहुत मधुर जान पड़ता है इस लिये मैं जैसा था उसके बतलाने में मुझको अब कुछ लाज नहीं आती ।

रसलीना—पर यह लोहू भरा रूमाल कैसा है ।

अलिवर—वह भी बात आई जाती है—जब हम दोनों ने अपना अपना हाल एक दूसरे से कहा और मैंने अपने इस बन में आने का हाल कहा तब स्वाभाविक प्रेम के कारण हम दोनों के आँसू बहने लगे—और वह मुझे बड़े महाराज के सामने ले गया—बड़े महाराज ने दया करके मुझे नये कपड़े दिये और भोजन कराया—और मेरे भाई से कहा कि अब इसे प्रेम के साथ रक्खो—तब मेरा भाई तुरन्त ही मुझको अपनी गुफा में ले गया—वहाँ जा कर जब उसने अपने कपड़े उतारे तब जान पड़ा कि उस सिंहिनी ने उसकी बाँह से कुछ माँस काट लिया था जिसके घाव से खून बह रहा था—अब वह मूर्छित और अशक्त हो कर रसलीना रसलीना पुकारने लगा—तब मैंने उसको ढाढ़स दिलाया और घाव पर पट्टी बाँधी—थोड़ी देर के पीछे जब उसका चित्त कुछ ठिकाने हुआ तब उसने मुझको तुम्हारे पास भेजा और यह कहा कि मेरी ओर से बिनती करना कि प्रतिज्ञा भङ्ग करने का अपराध क्षमा करो और यह लोहू भरा रूमाल उसके हाथ में देना जिसको मैं कौतुक के लिये अपनी रसलीना कह कर पुकारता हूँ ।

(रसलीना मूर्छित हो जाती है)

सुशीला—क्यों—महावीर! यह क्या दसा है? प्यारे महावीर।

अलिवर—बहुत लोग लोहू देख कर मूर्छित हो जाते हैं।

सुशीला—यहाँ पर इसमें कुछ विशेष बात है। भाई! महावीर।

अलिवर—देखो अब सचेत हो रहे हैं।

रसलीना—मुझे घर ले चलो।

सुशीला—मैं तुमको ले चलूँगी—तुम इसका हाथ पकड़ लो।

अलिवर—भाई! होश में आओ। तुम कैसे मर्द हो—तुममें मर्दों का सा साहस नहीं है।

रसलीन—हाँ, मैं मानता हूँ कि मुझ में मर्दों का सा साहस नहीं है—यह देख कर सब कोई जानेंगे कि यह छल बड़ी उत्तमता से किया गया है—कृपा कर के अपने भाई से कहना कि मैंने कैसी लीला दिखाई—हाय!

अलिवर—यह छल नहीं था—तुम्हारा चेहरा मुरझा गया है इससे साफ़ मालूम होता है कि सच्चा प्रेम था।

रसलीना—नहीं जी, विश्वास मानो, सचमुच छल ही है।

अलिवर—अच्छा! तो साहस करो—किसी तरह मर्दों का सा आचारण दिखाओ।

रसलीना—अच्छा, मैं प्रयत्न करता हूँ। परन्तु सच तो यह है कि परमेश्वर को मुझे स्त्री ही बनाना चाहिये था।

सुशीला—आओ—तुम्हारा चेहरा पीला पड़ता जाता है—घर की ओर चलो—महाशय! आप भी साथ चलिये।

अलिवर—अच्छा चलता हूँ—मुझे तो जबाब ले जाना है कि मेरे भाई का अपराध रसलीना ने कैसे क्षमा किया।

रसलीना—मैं कुछ गढंत गढ़ूँगा—परन्तु तुमसे बिनती है कि कृपा कर के उससे मेरे छल की उत्तमता की तारीफ़ करना—क्यों? चलते हो। (सब बाहर जाते हैं)

पाँचवाँ अङ्क ।

पहिला स्थान—आरण्यक बन ।

(मूसरचन्द और अतवरिया आते हैं)

मूसरचन्द—अरी अतवरिया! हमको मौका मिल जायगा—प्यारी अतवरिया धीरज धर ।

अतवरिया—इसमें संदेह नहीं कि पुरोहित बड़ा अच्छा था । बुड्ढा जो चाहै सो बके ।

मूसरचन्द—अरी अतवरिया ! नहीं । पुरोहित अलिवर मार्तण्ड बड़े दुष्ट हैं—पर इस बन में एक पुरुष है जो तुझसे प्रीति करना चाहता है ।

अतवरिया—मैं उसको जानती हूँ, इस संसार में मेरा उससे कुछ नाता नहीं आ रहा है ।

मूसरचन्द—मसखरे के दर्शन से मुझे ऐसा आनन्द होता है मानो हलुआ पूरी मिल गई—मैं सच कहता हूँ कि वह हमारे ही समान चतुर चटक उत्तर देनेवाला है—हम दोनों एक दूसरे की हँसी उड़ावैंगे—हम लोग चुप नहीं रह सकते ।

(बिलासी आता है)

बिलासी—अतवरिया ! राम, राम ।

अतवरिया—बिलासी ! परमेश्वर तुम्हारा भला करै ।

मूसरचन्द—जै जगदीश, प्यारे मित्र ! अरे यार अपना मूँड़ ढाँके रहो मूँड़—कृपा करके ढाँके रहो—तुम कै बरस के हो ।

बिलासी—पाँच और बीस ।

मूसरचन्द—पूरी गदह पचीसी—क्या तुम्हारा नाम बिलासी है ?

बिलासी—हाँ साहब । बिलासी ।

मूसरचन्द—नाम तो बहुत अच्छा है—इसी बन में पैदा हुये थे ।

बिलासी—हाँ साहब—परमेश्वर को हज़ार हज़ार धन्यबाद ।

मूसरचन्द—परमेश्वर को हज़ार हज़ार धन्यबाद ! बड़ा अच्छा जवाब है—धनी हो क्या ?

बिलासी—हाँ साहब—हूँ ! कुछ ऐसाही वैसा ।

मूसरचन्द—ऐसेही वैसे होना भला है—बहुत भला है—बहुतही भला है ! और नहीं भी है—बस ऐसेही वैसे होना है—तुम्हें कुछ बुद्धि भी है ?

बिलासी—हाँ जी—बड़ी पैनी बुद्धि ।

मूसरचन्द—क्यों । अच्छा कहा । अब मुझे एक कहावत याद आई—जो मूढ़ होता है वह अपने को चतुर जानता है और चतुर आदमी अपने को मूर्ख मानता है—बिधर्मी विज्ञान वादी का मन जब अंगूर खाने को चलता तो उसके ओंठ खुल जाते थे और वह अंगूर उठा कर मुँह में रख लेता है इससे यह सिद्ध करता है कि अंगूर खाने के लिये बनाये गये हैं और ओंठ खुलने के लिये—क्या तुम इस कुँवारी से प्रेम रखते हो ।

बिलासी—हाँ जी । ज़रूर ।

मूसरचन्द—मुझसे हाथ मिलाओ ! तुम चतुर भी हो ।

बिलासी—नहीं साहब ।

मूसरचन्द—तब मुझसे यह बात सीख लो कि जब कुछ हो जाय तभी उसको होना जानो—क्योंकि यह एक अलङ्कार है कि जब दूध किसी बरतन से दूसरे गिलास में उँडेला जाता है तब वह एक को भर कर दूसरे को

खाली कर देता है—और इस बात में सब एक मत हैं कि वह वहीं रहता है—पर अब तुम वह नहीं हो क्योंकि अब वह मैं हूँ।

बिलासी—वह कौन।

मूसरचन्द—वह जो इस स्त्री से ब्याह करैगा—इसलिये अब इसे त्याग दो, साधारण बोली में कहा जाता है छोड़ दो और ठेठ बोली में कहा जाता है कि इस स्त्री के सङ्ग से बिलकुल अलग हो जाओ—और सब का निचोड़ यह है कि इस स्त्री से हाथ धोओ नहीं तो अपने जीवन से हाथ धोओगे—और तुम्हारे समझने के वास्ते और साफ़ कहे देता हूँ कि तुम्हारी मृत्यु हो जायगी—यानी तुम्हारे प्राण ले लूँगा—तुमको नाश कर दूँगा तुम्हारे जीवन को मृत्यु से और तुम्हारी स्वतन्त्रता को पराधीनता से बदल दूँगा—तुमको बिष दे दूँगा—तुमको पाटूँगा—तुम्हारे खोपड़े पर लट्ठ धमक दूँगा—तुमसे कुश्ती लड़ूँगा—तुमको छल से नाश कर दूँगा—तुमको डेढ़ सौ उपायों से मार डालूँगा—इस लिये दुम दबा कर खिसक जाओ

अतवरिया—हाँ जी बिलासी! ऐसा ही।

बिलासी—अच्छा भइया! भगवान तुम्हारा भला करै (जाताहै)

(करन आता है)

करन—हमारे मालिक और मालकिन तुमको ढूँढ़ रहे हैं, चलो चलो।

मूसरचन्द—खिसक जा, अतवरिया! तू खिसक जा—मैं चलता हूँ—(बाहर जाता है)

दूसरा स्थान ।

बन का दूसरा भाग ।

(आर्यनन्दन और अलिवर आते हैं)

आर्यनन्दन—कैसे हो सकता है एक छिनही भर के जान पहिचान में तुम उस पर मोहित हो जाओ—देखते ही उस पर लट्टू हो गये? और ऐसे लट्टू कि बस ब्याहही हो जाय ? और वह भी राज़ी हो जाय, क्या इस बात पर तुम जमे रहोगे ?

अलिवर—तुम इसका बिचार ही छोड़ दो कि यह काम झट पट बे समझे बूझे किया गया या वह दरिद्र है। नैनों से नैन मिलते ही, मन मिल जाने पर तुम सन्देह मत करो, निश्चय जानो कि मैं दुखारिनी पर मोहित हूँ और वह भी मुझको चाहती है—तुम हम दोनों को यह सम्मति दो कि हम एक दूसरे का लाभ कर सकै—इसमें तुम्हारा भला होगा—क्योंकि पिता श्री रामानन्दजी की हवेली और जमींदारी सब मैं तुमको दे दूँगा और इस बन में रह कर साधारण रीति से दिन काटूँगा।

आर्यनन्दन—अच्छा ! भगवान करै कलहही तुम्हारा उसका गँठबन्धन हो जाय, मैं बड़े महाराज को नेवता दूँगा—तुम जाय, दुखारिनी से कहो कि वह भी तैयार रहै—वह देखो मेरी रसलीना यहाँ आ रही है ।

(रसलीना आती है)

रसलीना—भाई ! परमेश्वर तुम्हारा भी कल्याण करैं ।

अलिवर—बहिन परमेश्वर तुम्हारा भी कल्याण करैं। (बाहर जाता है)

रसलीना—हे मेरे प्यारे आर्यनन्दन ! तुम्हारा हृदय घायल देख कर मैं बहुत दुखी हूँ ।

आर्यनन्दन—मेरी बाँह घायल हो गई है ।

रसलीना—मैंने समझा था कि तुम्हारा हृदय सिंहिनी के पञ्जों से घायल हो गया है ।

आर्यनन्दन—नहीं, यह केवल स्त्री के नयनों से घायल हुआ है ।

रसलीना—तुम्हारे भाई ने तुमसे कहा था कि जब उसने रूमाल दिखलाया था तब मैं छल से कैसी मूर्छित हो गई थी ।

आर्यनन्दन—हाँ ! और इससे भी अधिक अचंभे की बातें कहीं ।

रसलीना--ओ हो ! मैं तुम्हारा मतलब जान गई । वह सब सच है, दो मेढ़ों की लड़ाई. और शाह रोम के समान अपनी बड़ाई बखान कि मैं आया, मैंने देखा, मैंने जीत लिया, इसके सिवाय और कोई बात अचरज की नहीं थी—तुम्हारे भाइ और मेरी बहिन मिलतेही प्रेम करने लगे—लम्बी लम्बी साँसैं भरने लगे, और इस लम्बी साँस का कारण पूँछने लगे—कारण जानतेही उसकी दवा बिचारने लगे—और इस तरह दोनों ने बिवाह की एक ऐसी सीढ़ी बनाई कि जिसपर दोनों बहुत जल्द चढ़ जाँयगे—वह दोनों सचमुच कामार्त हैं और जल्दही मिला चाहते हैं—लाठियाँ उनको अलग नहीं कर सकतीं ।

आर्यनन्दन—कल्ह उनका ब्याह हो जायगा और मैं बड़े महाराज को नेवता दूँगा—पर हाय ! दूसरों के नेत्रों से आनन्द की झलक देखना कैसा दुःखदायक है—मेरा भाई अपनी चाही हुई वस्तु पाकर जितना प्रसन्न होगा कल्ह उससे भी अधिक मुझे दुःख होगा ।

रसलीना—क्यों ? क्या कलह मैं तुम्हारे लिये रसलीना नहीं बन सकती ।

आर्यनन्दन—मन के लड्डू खाने से मेरा पेट नहीं भर सकता ।

रसलीना—तब तो तुमसे देर तक व्यर्थ बातचीत करना उचित नहीं है—तुम यह जान लो कि मैं कौन हूँ—और यह समझो कि अब मैं तुम्हारे मतलब की बात कह रही हूँ—तुम भलेमानुस हो और बुद्धिमान आदमी हो—इस कहने से मेरा यह मतलब नहीं है कि तुम हमारी बड़ाई करने लगो और न यही मतलब है कि तुम हमारी अधिक प्रतिष्ठा करने लगो । उचित यह है कि मेरी अधिक प्रशंसा न कर के मेरा परिश्रम अपने उपकार के अर्थ समझने लगो तब तो अलबत्ता विश्वास मानो कि मैं बड़ी आश्चर्य भरी बातें कर सकती हूँ । जब से मैं तीन बरस की हुई हूँ तब से मेरी एक जादूगर की सङ्गत है—उसके करतब बड़े बिचित्र हैं और कोई काम निन्दा करने योग्य नहीं है—जो तुम रसलीना पर इतने मोहित हो जितना प्रगट करते हो तो जब तुम्हारे भाई का ब्याह दुखारिनी के साथ होगा उसी समय तुम्हारा ब्याह रसलीना से हो जायगा—मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि तुम्हारे प्रेम के कारण उसकी क्या दशा हो गई है—और जो इसमें तुमको कुछ कष्ट न हो तो मेरे लिये यह असंभव नहीं है कि बिना किसी प्रकार के छल के डर छोड़ कर मैं उसको तुम्हारे सामने खड़ी कर दूँ ।

आर्यनन्दन--सच !

रसलीना—मैं सच कहती हूँ—मैं जादूगर हूँ तो भी अपना जीवन अमोल समझती हूँ—इस लिये अब अच्छे कपड़े पहनो और अपने मित्रों को जना दो—क्योंकि जो तुम चाहोगे तो कल्ह तुम्हारा ब्याह अवश्य हो जायगा—और रसलीना के साथ होगा—पर तुम्हारी इच्छा होगी तब—यह देखो मुझसे प्रेम करने वाली अपने प्रेमी के साथ यहाँ आ रही है।

(सालिक और फुलिया आते हैं)

फुलिया—अजी—जो चिट्ठी मैंने तुमको लिखी थी वह तुमने सब को दिखा दी—तुमने मेरे साथ यह बड़ा अनुचित काम किया।

रसलीना—मैंने किया भी तो कुछ चिन्ता नहीं—मैं जान बूझ कर तुम्हारी दृष्टि में ओछा और कठोर प्रतीत होना चाहता हूँ। तुम्हारे साथ सच्चा प्रेम करने वाला यह चरवाहा आ रहा है—इसकी ओर देखो—इससे प्रेम करो—यह तुम्हारे ऊपर लट्टू है।

फुलिया—प्यारे चरवाहे—इससे पूँछो कि प्रेम क्या है?

सालिक—प्रेम केवल विश्वास और आँसुओं से बना होता है और फुलिया के लिये मेरी ऐसीही दशा है।

फुलिया—और मेरी महावीर के लिये।

आर्यनन्दन—और मेरी रसलीना के लिये।

रसलीना—और मेरी किसी स्त्री के लिये नहीं।

सालिक—प्रेम केवल भक्ति और सेवा से बना है और फुलिया के लिये मैं ऐसाही हूँ।

फुलिया—और मैं महावीर के लिये।

आर्यनन्दन—और मैं रसलीना के लिये ।

रसलीना—और मैं किसी स्त्री के लिये नहीं ।

सालिक—यह केवल—पागल पन, कामानुराग, अभिलाषा, पूजा, धर्म, तप, नम्रता, सहनशीलता, निष्कपट, परीक्षा और आज्ञापालन का बना होता है—और फुलिया के लिये मैं ऐसाही हूँ ।

फुलिया—और मैं महावीर के लिये ।

आर्यनन्दन—और मैं रसलीना के लिये ।

रसलीना—और मैं किसी स्त्री के लिये नहीं ।

फुलिया—(रसलीना से) जो यह ऐसेही है तो तुम मुझको क्यों कलङ्क लगाते हो कि मैं तुम्हारे ऊपर मोहित हूँ ।

सालिक—(फुलिया को) यह ऐसेही है तो तुम मुझको क्यों कलङ्क लगाती हो कि मैं तुम्हारे ऊपर मोहित हूँ ।

आर्यनन्दन—यह ऐसेही है तो तुम मुझे अनुरक्त होने के लिये क्यों कलङ्कित करते हो ।

रसलीना—तुम यह क्यों कहते हो, तुम मुझे अनुरक्त होने के लिये क्यों कलङ्कित करते हो ।

आर्यनन्दन—उसको, जो न तो यहाँ है और न यह सुन रही है ।

रसलीना—ले कृपा कर के अब और कुछ मत बोलो—जैसे कुत्ते चन्द्रग्रहण में भूँकने लगते हैं—(सालिक को) जो मेरा बश चलेगा तो तुम्हारी सहायता करूँगा—कल सब कोई इकट्ठे हो कर मुझ से मिलो—(फुलिया को) जो मैं कभी किसी स्त्री से बिबाह करूँगा तो तुम्हीं से करूँगा—और मेरा बिबाह कल हो जायगा—(आर्यनन्दन को) जो मैं कभी किसी पुरुष को सन्तुष्ट

करूँगा तो तुम्हीं को और तुम्हारा विवाह कलह हो जायगा—(सालिक को) जिससे तुम प्रसन्न होते हो अगर उससे सन्तुष्ट हो तो मैं तुम को सन्तुष्ट कर दूँगा—और कलह तुम्हारा विवाह हो जायगा—(आर्य नन्दन को) जो तुम रसलीना के प्रेमी हो तो ज़रूर मिलना—(सालिक को) जो तुम फुलिया के प्रेमी हो तो ज़रूर मिलना और मैं जो किसी स्त्री का प्रेमी नहीं हूँ तो ज़रूर मिलुँगा—अच्छा ! अब मैंने सबको हुकुम सुना दिया ।

सालिक—जो मैं जीता रहा तो कभी न चूकूँगा ।

फुलिया—और न मैं—

आर्यनन्दन—और न मैं । (सब बाहर जाते हैं)

तीसरा स्थान ।

(बन का दूसरा भाग)

(मूसरचंद और अतवरिया आते हैं)

मूसरचन्द—अतवरिया—वह आनन्द का दिन कल है—कल हम दोनों का विवाह होगा ।

अतवरिया—मैं इसको सच्चे मन से चाहती हूँ—और मेरा विश्वास है कि जो मैं विवाहिता स्त्री बनना चाहती हूँ यह कुछ बुरी बात नहीं है—यह देखो बनवासी महाराज के दो सेवक यहीं आ रहे हैं ।

(दो सेवक आते हैं)

प्रथम सेवक—वाह जी वाह ! तुम ख़ूब मिले ।

मूसरचन्द—ख़ूब मिले जी, ख़ूब—आओ—कुछ गाओ ।

दूसरा सेवक—हम तो आपके आज्ञाकारी सेवक हैं (दोनों बैठ जाते हैं)

प्रथम सेवक—हम मनमानी ताली बजावैंगे तो क्या आप हमारी निन्दा न करैंगे—और हम पर थू थू न करेंगे—और हमको बेसुरे न कहैंगे—क्योंकि बिना ताल सुर के गानेवालों को यही शाबासियाँ मिला करती हैं।

दूसरा सेवक—यह सच है—हम दोनों का सुर दो बवनों के एक घोड़े पर सवार होने के समान है।

गीत।

कोइ रसिक छयल रँगमस्त चला जाता था।
एक लिये नवेली सङ्ग गीत गाता था॥
क्या खिले फूल सब रङ्ग बिरङ्गी बन में।
इस ऋतु वसन्त में हवस व्याह की मन में॥
ए पपिहा कोयल मोर शोर करते हैं।
त्यों हहा हिहो हँसि हम भी मोद भरते हैं॥
सब इस वसन्त की चाह दिल में रखते हैं।
मन मुदित प्रेम रस स्वाद अमृत चखते हैं॥
अब तुम भी करो विवाह मौज से बन में।
दम्पति मिलि भरे उछाह रहैं नित मन में॥
ए पपिहा कोयल मोर शोर करते हैं।
त्यों हहा हिहो हँसि हम भी मोद भरते हैं॥

मूसरचन्द—जवानों—इसमें तो सन्देह नहीं कि इस गीत में कुछ अनोखी बात नहीं थी परन्तु बहुत ही बे ताल सुर का था।

प्रथम सेवक—जी नहीं, आपको धोखा हो गया—हमारा राग सुर सहित था—हम ताल सुर से पीछे नहीं रहे।

मूसरचन्द—मैं सच कहता हूँ कि तुम पीछे ही रहे—ऐसी बेसुरी तान सुनने में मैंने अपना समय व्यर्थ गँवाया—परमेश्वर तुम्हारा भला करैं—और परमेश्वर तुम्हारा सुर ठीक करैं—अतवरिया! चल। (सब बाहर जाते हैं)

चौथा स्थान ।

बन का दूसरा भाग ।

(बड़े महाराज—अमीचन्द—जयकृष्ण—आर्यनन्दन—अलिवर और सुशीला आते हैं)

बड़े महाराज—आर्यनन्दन, क्या तुमको विश्वास है कि उस लड़के ने जो कुछ कहा है वह सब कर सकता है?

आर्यनन्दन—जो लोग ऐसा समझते हैं कि कदाचित मेरी आशा निर्मूल है और इस भय से डरते रहते हैं उनके समान मैं कभी तो विश्वास करता हूँ और कभी नहीं।

(रसलीना—सालिक—और फुलिया आते हैं)

रसलीना—जब तक बोलने का अवसर न आवै तब तक थोड़ी देर हमें चुप रहना चाहिये—(महाराज से) क्या आप कहते हैं कि जो मैं आपकी रसलीना को यहाँ लाकर मौजूद कर दूँ तो आप उसका कन्यादान आर्यनन्दन को कर देंगे?

बड़े महाराज—उसको दहेज में देने के लिये जो मेरे पास राज्य भी हो तो भी खुशी से ऐसा ही करूँगा।

रसलीना—(आर्यनन्दन से) और क्या तुम यह कहते हो कि मैं उसको यहाँ मौजूद कर दूँ तो तुम उसका पाणिग्रहण करोगे?

आर्यनन्दन—जो मैं सब राज्यों का सम्राट् होता तो भी खुशी से ऐसा करता ।

रसलीना—(फुलिया से) क्या तू कहती है कि जो मैं मान जाऊँ तो तू मुझ से ब्याह करैगी ?

फुलिया—जो ब्याह हो जाने के पीछे एक ही घंटे में मर जाऊँ तो भी खुशी से करूँगी—

रसलीना—अच्छा, जो मुझ से तुम्हारा मन ब्याह करने का न हो तो तुम अपने सच्चे प्रेमी चरवाहे की दुलहिन बनोगी ?

फुलिया—यही बात तो पक्की हुई है ।

रसलीना—(सालिक से) क्या तुम यह कहते हो कि जो फुलिया मानै तो तुम उसको ग्रहण करोगे ?

सालिक—इसको ग्रहण करना और मरना दोनों एक ही बात हो तोभी तैयार हूँ ।

रसलीना—मैने यह सब बातैं पूरी कर देने की प्रतिज्ञा की है। महाराज ! आप अपनी कन्या का दान करने के लिये तैयार रहिये और आर्यनन्दन ! तुम महाराज की कन्या का पाणिग्रहण करने के लिये तैयार रहो—फुलिया ! तू मुझ से विवाह करने के लिये तैयार रह और जो मुझसे विवाह न हो तो अपने प्रेमी चरवाहे से ही सही तैयार रह—और सालिक ! तुम इस बात पर तैयार रहो कि जो फुलिया का ब्याह मेरे साथ न हो तो तुम उससे ब्याह कर लोगे—और मैं इन सब कठिन कामों को सहज में कर देने का प्रबन्ध करने के लिये यहाँ से जाता हूँ—

(रसलीना और सुशीला बाहर जाती हैं)

बड़े महाराज—मुझे निश्चय होता है कि इस लड़के का मुख मेरी बेटी के मुख से बहुत मिलता जुलता है।

आर्यनन्दन—जी महाराज ! जब मैंने पहिले पहिल इसको देखा था तो मुझे यह ध्यान हुआ था कि यह आपकी कन्या का भाई है परन्तु इसका जन्म तो इस बन में हुआ है और इसके चचा ने जो बड़ा जादूगर था इसको बड़ी अद्भुत करामातें सिखाई हैं । भगवान जाने ! वह कहता तो ऐसाही है—

जयकृष्ण—यहाँ एक दूसरा ही तूफ़ान आनेवाला है कि यह जोड़े शरण लेने के लिये यहाँ चले आ रहे हैं—यह अजब जीवों का जोड़ा है जिनको सब लोग मसखरा कहा करते हैं ।

(मूसरचन्द और अतवरिया आते हैं)

मूसरचन्द—सबको बड़ी विनती के साथ प्रणाम है ।

जयकृष्ण—मेरे प्यारे स्वामी ! इसका स्वागत कीजिये । यह वही भला मानुस है जिससे कई बेर इस बन में मुझसे भेंट हुई है—यह बहुत कुछ जानता है । और सौगन्द खाके कहता है कि मैं राजसभा में रहा हूँ—

मूसरचन्द—जो किसी को विश्वास न हो तो वह मेरी परीक्षा करले—मैं नियम से चलता हूँ—मैंने स्त्री को भी प्रसन्न किया है—अपने मित्र के साथ नीति निबाही है—शत्रु के साथ भी दयाभाव रक्खा है—तीन दरज़ियों का मैं नाश कर चुका हूँ—चार बेर मुझे लड़ने का काम पड़ चुका है और एक बेर लड़ा भी होता—

जयकृष्ण—और लड़ाई क्यों नहीं हुई ।

मूसरचन्द—सच कहता हूँ कि हम सब इकट्ठे हुए तब यह निश्चय हुआ कि हम लोगों को लड़ाई सातवें* कारण से है—

जयकृष्ण—सातवाँ कारण कैसा ? प्यारे महाराज ! यह आपके मन का है ?

बड़े महाराज—हाँ ! मैं इससे बहुत प्रसन्न हूँ ।

मूसरचन्द—परमेश्वर आपका भला करै ! मैं भी आपसे बहुत प्रसन्न हूँ—महाशय ! संसार के सब स्त्री पुरुषों के तरह मैं भी यहाँ कसम खाने और न करने के लिये चलकर आया हूँ—जैसे कि ब्याह से जोड़ा मिलान होता है और भाग्यवश जोड़ी बिछुड़ती है। मेरी स्त्री एक दीन कन्या है और कुरूप भी है तो भी मेरी प्राणप्यारी है ! मेरा स्वभाव ही ऐसा दीन है कि मैं ऐसी चीज़ लेता हूँ जिसके लेने की दूसरा कोई इच्छा न करै। महाशय ! धन से भरीपुरी सज्जनता दीन घर में एक कंजूस की भाँति रहती है, जैसे मोती कुरूप सीपी में ।

बड़े महाराज—सचमुच यह तो बड़ा सयाना और बचनचतुर है ।

मूसरचन्द—हाँ साहब, ठठोलपन और ऐसे ही रोगों के कारण ।

जयकृष्ण—अच्छा, उस सातवें कारण की बात कहो—तुमने सातवें कारण पर लड़ाई बन्द होना कैसे जाना ?

मूसरचन्द—एक ऐसी झुठाई पर जो सात दर्जे दूर थी—अतवरिया ! तू धीरज से बैठी रह। महाशय ! इस तरह से कि मुझको राजसभा के एक सरदार की दाढ़ी

---

* लड़ाई का कारण झूठा था और झूठ खुल गया ।

की काट पसन्द नहीं आई थी तो मैंने उसको कहला भेजा कि तुम्हारी दाढ़ी की काट अच्छी नहीं है। उसने कहा, हाँ, ठीक है। यह भलमनसी का जवाब था। जो मैं उस को फिर कहला भेजता कि उसकी दाढ़ी की काट अच्छी नहीं है तो वह यह कहता कि मैंने अपनी पसन्द से बनवाया है—इसको नम्रता का उत्तर कहते हैं—और फिर भी मैं उसकी काट अच्छी न कहता और उस के जवाब में वह यह कहता कि तुम्हारी बात ठीक नहीं है, यह कड़ा उत्तर कहा जाता है। और जो मैं यह कहता कि काट ठीक नहीं है और उस के जवाब में वह यह कहता कि तुम्हारा कहना झूठ है यह अक्खड़पने का जवाब कहा जाता है। और जो इसपर भी मैं फिर कहता कि काट ठीक नहीं है और वह जवाब देता कि तुम मूर्ख झूठे हो तो यह झगड़ालू जवाब कहा जाता है—और इसी तरह व्यंग, झूठ और साक्षात झूठ तक जानना चाहिये।

जयकृष्ण—और तुमने कितनी बार कहा था कि उस की दाढ़ी की काट अच्छी न थी?

मूसरचन्द—न तो मैंने व्यंग झूठ कहने की हद से आगे बढ़ने की हिम्मत की और न उसने मेरे कहने को साक्षात् झूठ ठहराया; इस कारण हम लोगों में तलवारें निकाल कर, नापीं और चले आये।

जयकृष्ण—क्या अब तुम झुठाई के सातों दरजे कह सकते हो।

मूसरचन्द—हाँ साहब! हम लड़ाई की पुस्तकें छपवाते हैं—जैसे आप सदाचार की पुस्तकें छपवाते हैं—मैं आप को सातो दरजे बतलाता हूँ। (१) सभ्य उत्तर (२)

नम्रता का उत्तर (३) कड़ा उत्तर (४) अक्खड़पने का उत्तर (५) झगड़ालू उत्तर (६) व्यंग झूठ (७) साक्षात् झूठ—साक्षात् झूठ के सिवाय इन सब को आप टाल सकते हैं—और "यदि" के साथ आप इस को भी टाल सकते हैं—मुझे याद है कि एक बार सात जज एक मुक़द्दमा फ़ैसला नहीं कर सकते थे—पर जब लड़नेवाले सब इकट्ठे हुए, और उनमें एक को "यदि" याद आया, जैसे—"यदि तुमने ऐसा कहा तो मैंने भी ऐसा कहा"—यह बात सब ने मान ली और आपस में भाइयों की तरह व्यवहार करने लगे—यह "यदि" सब से बढ़ के शान्ति करनेवाला है—और इस में बड़े गुन हैं।

जयकृष्ण—महाराज—यह बड़ा विचित्र पुरुष है ? यह सब बातों में ऐसाही चतुर है और विदूषक भी है।

बड़े महाराज—यह अपना ठठोलपन एक लिल्लीघोड़ी की तरह प्रगट करता है और इसीमें अपनी बात की चतुराई के तीर छोड़ता है।

(मधुर गान होता है—रसलीना स्त्री के भेष में और सुशीला को लिये हुये गणेश आते हैं)

गणेश—स्वर्ग बजै अब आनन्द बधाई ।
सुख समृद्धि धरती पै छाई ॥
राजा सुनियो बात हमारी ।
रही स्वर्ग में सुता तुम्हारी ॥
हम तुमसन तेहि आनि मिलावत ।
प्रेमीजन सब मोद मनावत ॥

जो कन्या कर परम सनेही ।
तेहि याहि देहु धर्म तव एही ॥

रसलीना—(बड़े महाराज से)

प्रेम समेत प्रणाम है, सुनो पिता महराज ।
कन्या हूँ मैं आप की, देखि तृप्त भइ आज ॥

(आर्यनन्दन से)

तव कर मैं अर्पित करौं, तन मन जीवन प्रान ।
अंगीकृत मोहि कीजिये, मेरे नाह सुजान ॥

बड़े महाराज—जो मेरी आखें धोखा नहीं देतीं तो तुम मेरी बेटी हो ।

आर्यनन्दन—और जो मेरी आँखें धोखा नहीं देती तो तुम मेरी रसलीना हो ।

फुलिया—जो कुछ देखती हूँ वह सच है तो मेरा प्रेम व्यर्थ था ।

रसलीना—(बड़े महाराज से)

जिसे जानती हूँ न हो वह जो आप ।
तो फिर चाहती मैं नहीं और बाप ॥

(आर्यनन्दन से)

अगर तुम न हो आर्यनन्दन सोई ।
नहीं और पति चाहती मैं कोई ॥

(फुलिया से)

अगर वह नहीं है तू फुलिया अरी ।
न चाहूँ कभी नारि मैं दूसरी ॥

गणेश— अब सन्देह करो जनि कोई ।
वचन प्रमान सत्य मम होई ॥

चारिहु वर अरु कन्या चारी ।
ब्याह उछाह सबहि सुखकारी ॥
(आर्यनन्दन और रसलीना से)
एकहि प्राण देह दुइ धारी ।
सदा रहौ तुम दोउ सुखारी ॥
(अलिवर और सुशीला से)
शुचि सनेह आशीस हमारे ।
सुफल ब्याह सुख होहि तुम्हारे ॥
(फुलिया से)
कै तुम बरहु नारि कमनीया ।
कै धारहु निज पति रमनीया ॥
(मूसरचन्द और अतवरिया से)
मूसरचन्द अतवरिया दोई ।
नित मुद मंगल तुम्ह कहँ होई ॥
मंगलचार ब्याह के गावौ ।
सब मिल अब आनन्द मनावौ ॥
करहु परस्पर प्रश्न सोहाई ।
जेहि ते सब कर संशय जाई ॥

बड़े महाराज—मेरी प्यारी भतीजी ! तेरे आनेसे मुझे बड़ा आनन्द हुआ, और बेटी ! बड़ी भारी खुशी हुई कि तू आ गई ।

फुलिया—(सालिक से) मैं अपना प्रन न तोड़ूँगी—अब तुम मेरे स्वामी हो—तुम्हारे सच्चे प्रेम के कारण मेरी प्रीति तुम में हुई है ।

(जयकरण आता है)

जयकरण—कृपा कर के मुझे दो एक बात कहने दीजिये—मैं श्री रविनन्दन का दूसरा बेटा हूँ—और आप सब सज्जनों

के लिये यह समाचार लाया हूँ—राजा पुण्डरीक ने जब यह सुना कि सब सज्जन लोग धीरे धीरे बन में चले जा रहे हैं तब एक बड़ी सेना तैय्यार की और सब को साथ लेकर इस विचार से यहाँ आ रहे थे कि अपने भाई को पकड़ कर तलवार से मारडालैं—इस वन के सीमा तक पहुँचे थे कि एक बूढ़े धर्मात्मा से भेंट होगई—उस महात्मा के उपदेश से राजा पुण्डरीक का मन संसार से फिर गया और कुचेष्टा मिट गई—अब उसने अपनी राजगद्दी अपने बनवासी भाई को समर्पण की है और जो जो सरदार उसके भाई के साथ निकाले गये थे उन सबकी ज़मीन और जायदाद जो ज़ब्त कर लीथी लौटा दी—इस बात की सचाई के लिये परमेश्वर की साक्षी देता हूँ ।

बड़े महाराज—वाह जवान ! तुम भले आये । अपने भाइयों के ब्याह के अवसर पर तुम्हारा आना बहुत अच्छा हुआ । एक वह है कि जिसकी ज़मीन ज़ब्त है—दूसरा वह है कि जिसकी दृष्टि सारी पृथ्वी ही जागीर है—पहिले तो हम को वह काम पूरा करना चाहिये जो बड़े भाग्य से हमने इस वन में आरंभ किया है—इसके पीछे इस आनन्दमयी समाज के सब लोग जिन्होंने दिन रात हमारे साथ दुख भोगे हैं अपनी अपनी दशा के अनुसार हमारे फिरे दिनों का सुख भोगैं—परन्तु इस समय जो प्रतिष्ठा फिर से मिली है उसको एकदम भूल कर हम को इस जंगल में मंगल मनाना चाहिये—बाजे बजाओ—और दुलहिनो ! और दुलहो ! तुम सब कोई मिलकर आनन्द से नाचो गाओ ।

जयकृष्ण—महाराज ! हमभी कुछ कहना चाहते हैं—हमने सुना है कि राजा पुण्डरीक ने राज पाट तजकर सन्यास ले लिया है—सच !

जयकरण—सच है, ऐसाही किया है।

जयकृष्ण—मैं भी उनके पास जाऊँगा—ऐसा धर्म बदलनेवालों से बहुत सी बातें सीखने योग्य होती हैं—(राजा से) आपको आपकी पहिली प्रतिष्ठा मुबारक हो क्योंकि आपका सदाचार और धीरज इसीके योग्य है—(आर्य-नन्दन से) तुमको यह प्रेमी स्त्री मुबारक हो क्योंकि तुम अपने सच्चे प्रेम के कारण पूर्णरीति से इसके योग्य हो (अलिवर से) तुम्हारी जागीर, तुम्हारी प्राणप्यारी, और तुम्हारे उत्तम सम्बन्ध, सब तुम को मुबारक हों (सालिक से) अपने योग्य विवाह का सुख तुम सदा भोग करो, (मूसरचन्द को) तुमको तुम्हारी वचन-चतुरता मुबारक हो क्योंकि तुम्हारी प्रेमयात्रा केवल दो महीने के लिये है—इस तरह तुम सब कोई अपने अपने मन के अनुसार सुख भोग करो—मेरा मन नाचने को नहीं चाहता—मेरा मन किसी और ही ओर झुका है।

बड़े महाराजा—ठहरो ! जयकृष्ण ! ठहरो ।

जयकृष्ण—मैं खेल कूद देखने के लिये नहीं ठहर सकता, जो कुछ आप मुझसे कहना चाहै, वह एकान्त में कहियेगा—मैं आपकी गुफ़ा में ठहरा रहूँगा। (बाहर जाता है)

बड़े महाराज—किए जाओ, किए जाओ, विवाह की सब रीतें किए जाओ—परमेश्वर की कृपा से हमें विश्वास है कि इन सब कामों का फल आनन्द ही होगा ।

(सब नाचते कूदते बाहर जाते हैं)

(उपसंहार)

रसलीना—समाज की रीति नहीं है कि स्त्री उपसंहार करै तो भी कुलबधू सज्जनों के सामने उपसंहार करै तो कुछ बुराई भी नहीं है—यह बात सच है कि उत्तम मिठाई बेचनेवाले के दूकान पर इश्तिहार लगाने की ज़रूरत नहीं होती कि यह बढ़िया है। ऐसेही एक अच्छा नाटक खेलनेवाले को भी उपसंहार की ज़रूरत नहीं है—परन्तु अच्छो मिठाई बेचनेवाले अपनी दूकान पर इश्तिहार लटकाते ही हैं—और इसी तरह बढ़िया नाटक अच्छे उपसंहार के संयोग से और भी मन को लुभानेवाला हो जाता है—अब इस समय मेरी कैसी कठिन दशा है कि न तो मैं यही विश्वास दिला सकती हूँ कि नाटक बहुत ही अच्छा हुआ और न उत्तम उपसंहार ही कर सकती हूँ—मेरा स्वाँग कुछ भिक्षुक का स्वाँग है नहीं—कि प्रार्थना करूँ परन्तु मेरा काम आप लोगों का मन लुभा लेने का है—और यह मैं स्त्रियों ही से आरंभ करती हूँ—स्त्रियो! मैं तुम से निवेदन करती हूँ कि पुरुषों से जो तुम्हारा प्रेम है उसके वास्ते तुम इस नाटक को जितना चाहो पसन्द करो—और हे पुरुषो! मैं तुम को भी निवेदन करती हूँ कि स्त्रियों के साथ जो तुम्हारा प्रेम है—और जो तुम्हारे मन्द मुसुकान से प्रतीत होता है कि अवश्य ही है—उसके कारण, तुम्हारे और स्त्रियों के परस्पर सम्बन्ध में इस नाटक का रोचक होना अवश्य सम्भव है। जो मैं कुलस्त्री न होती, तो तुम में से उतने पुरुषों

को जिनके कपोल मेरी इच्छा के अनुसार उत्तम होते, जिनका रंग मेरी रुचि के अनुसार उत्तम होता— जिनके मुखश्वास से सुगन्ध निकलती—उनको मैं अवश्य चूमती—और मुझे विश्वास है कि वह सब पुरुषकपोल उत्तम हैं—जिनके मुख सुन्दर हैं—और जिनके श्वास सुगन्धित हैं—मेरे इस अच्छे प्रस्ताव पर कि जो मैं नम्रतापूर्वक उनके सामने कर रही हूँ मुझ को शुभ आशीर्वाद देकर अवश्य बिदा करेंगे ।

(बाहर जाती है)

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad.